

पंजाब यूनिवर्सिटी की हिन्दीरत्न परीक्षा में नियत

वृन्द–सतसई

भाषानुवाद सहित



अनुवादक—

पं० शङ्करदेवजी शास्त्री एम्. ए.

गुणावती



Gun Wati

वृन्द-सतसई

सरल हिन्दी अनुवाद, दोहासूची तथा
कठिनशब्दार्थसूची सहित ।

अनुवादक—
श्री० पं० शङ्करदेवजी शास्त्री एम्. ए.

प्रकाशक—
मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास अध्यक्ष—
संस्कृत पुस्तकालय सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर ।

प्रथम संस्करण] सम्वत् १९८३ [मूल्य ॥)

ला० लालजीदास के ऐंग्लो ओरियण्टल प्रेस,
लाहौर में मुद्रित।

प्राथमिक वक्तव्य ।

किसी समय में हिन्दी भाषा में 'सतसई' लिखने का अच्छा सम्प्रदाय रहा है । इसीलिये हिन्दी में 'बिहारी सतसई' 'मतिराम सतसई' 'तुलसी सतसई' 'चन्दन सतसई' आदि अनेक सतसईयां आज विद्यमान हैं, उन्हीं में से एक प्रसिद्ध 'वृन्द सतसई' भी है । इसका दूसरा नाम 'दृष्टान्त सतसई' भी कहा जाता है । इसके प्रत्येक पद्य में एक न एक दृष्टान्त मौजूद है, इसीलिये इसका 'दृष्टान्त सतसई, यथार्थ नाम है । इस सतसई का निर्माण करने वाले महाकवि वृन्द हैं, इस लिये इसको 'वृन्द सतसई' भी कह देते हैं ।

महाकवि वृन्द किस समय और कहां हुए, इस में बहुत विवाद है । माधुरी की दूसरी पूर्ण संख्या में 'महाकवि वृन्द' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था । उस में वृन्द का समय आदि इस प्रकार निर्णीत किया गया है—

"कवि-पुंगव 'वृन्द' भारत के मुगल सम्राट् औरंगजेब का दरबारी कवि था । यह औरंगजेब के पोते अजीमुश्शान के साथ, जो अपने पितामह (औरंगजेब) के समय से ही बंगाल बिहार और उड़ीसे का सूबेदार था, ढाके में रहता था । अजीमुश्शान स्वयं भी व्रजभाषा तथा उर्दू का अच्छा कवि और शायर था । इस लिये उसने अपने दादा (औरंगजेब) से उक्त (वृंद) कवि को मांग लिया था । वह उन्हें बड़ी इज्जत और कदर के साथ अपने पास रखता था ।

स्वयं वृन्द कवि ने अपनी 'दृष्टान्त सतसई' का अजीमुश्शान के मनोरञ्जन के लिये ढाके में बनाया जाना लिखा है ।

वह अपनी सतसई के अन्त में लिखता है, कि:—

समय सार दोहानि कौं सुनत होय मनमोद ।
प्रगट भई यह सतसई भाषा वृन्द विनोद ॥ ७०५ ॥
अति उदार रिझवार जग शाह अजीमुश्शान ।

सतसैया सुनि वृन्द को कीनो अति सन्मान ॥ ७०६ ॥
संवत ससि रस वार ससि कातिक सुदि ससि वार ।
सातें ढाका शहर में उपज्यो यहै विचार ॥ ७०७ ॥

बृन्द विनोद सतसई के इन अन्तिम तीन दोहों से यह बात सिद्ध होती है कि यह सतसई औरंगजेब के जीवन काल में, उसके पोते अजीमुश्शान के मनोविनोद के लिये, उसके आश्रित कवि बृन्द ने संवत् १७६१ वैक्रम, कार्तिक शुक्ला सप्तमी, सोमवार को ढाका शहर में बनाकर पूरी की ।"

परन्तु इस विषय में एक बात विचारणीय है । वर्त्तमान उपलभ्यमान पुस्तकों में केवल ७०५ दोहे ही पाये जाते हैं । और बृन्द के समय तथा संवत्सर आदि अगले ही दो दोहों से मालूम होते है, कहीं ऐसा तो नहीं कि ये दोहे पीछे से किसी ने जोड़ दिये हों ।

उपर्युक्त लेख में इस विषय पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है । उसमें लिखा है कि श्रीनाथ द्वारे के समीप 'कांकरोली' स्थान के गोस्वामी श्री बालकृष्णलालजी से, बृन्दसतसई की एक हस्तलिखित प्रति श्री किशोरीलालजी गोस्वामी (माधुरी के लेख के लेखक महोदय) को प्राप्त हुई । यह प्रति सं० १८०८ वैक्रम की लिखी हुई है, जिसे मथुरापुरी के जीवनभट्ट नामक नागर ब्राह्मण ने अपने मनोविनोद के लिये लिखा है । इस प्रति में ठीक ७०७ दोहे हैं । इस महाकवि बृन्द का समय और स्थान इसी के अनुसार ठीक समझना चाहिये ।

गोस्वामी बालकृष्णलालजी की बृन्द के विषय में यह सम्मति है:— 'यह कवि गौड़ ब्राह्मण कुल में मथुरा प्रान्त के किसी ग्राम में पैदा हुआ था । इस ने कहां और कितनी शिक्षा पाई, इसका कोई पता नहीं । किसी तरह यह औरंगजेब के दरबार में पहुँच गया, और दरबारी कवि बना लिया गया। एक दिन वह मथुरा के उस पार श्री गोकुलजी के ठाकुर श्री गोकुलनाथजी के दर्शनों को गया, और वहां के तत्कालीन गोस्वामी का शिष्य होगया ।

इसीसे इस ने अपनी सतसई के मंगलाचरण में 'श्री गुरुनाथ प्रभाव तें' इत्यादि कह कर वस्तु-निर्देशात्मक मंगलाचरण किया है।' इत्यादि।

बृन्द सतसई के पर्यालोचन से यह बात अवश्य प्रतीत होती है कि महाकवि बृन्द ने प्राकृत भाषा के अतिरिक्त संस्कृत भाषा का भी अच्छा अभ्यास किया था। इस सतसई के अनेक दोहे संस्कृत श्लोकों के अनुवाद मात्र हैं।

बृन्द के जन्म स्थान के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह भी विचार है, कि इनकी जन्मभूमि जोधपुर राज्य में मेड़ना स्थान है। बृन्दजी के वंश वाले अब भी वहां रहते हैं।

बृन्द सतसई के अनेक संस्करण अभी तक भिन्न २ स्थानों से प्रकाशित हो चुके हैं। फिर भी इस संस्करण को और भी अधिक छात्रोपयोगी बनाने के लिये हमने दोहों के सरल हिन्दी अनुवाद के अतिरिक्त इसके पीछे दो सूचियां भी जोड़ दी हैं। एक सूची अकारादि क्रम से दोहों की है, और दूसरी सूची सतसई के कुछ कठिन शब्दों की, उनके अर्थ सहित दी गई है। अन्त में मैं विद्वानों से निवेदन करता हूं, कि दोहों के अर्थों में यदि कहीं मनुष्योचित सुलभ प्रमाद के कारण कोई अन्यथाभाव होगये हों, तो उन्हें ठीक करके ही पढ़ने की कृपा करें।

इस कार्य के पूरा होने में मैं अपने परममित्र विद्वद्वर प्रो. उदयवीर शास्त्री का अत्यन्त कृतज्ञ हूं। उन्होंने सम्पूर्ण पुस्तक के प्रूफ संशोधन करके, दोनों प्रकार की सूची तैयार करके तथा वक्तव्य की पुष्कल सामग्री उपस्थित कर इस कार्य के पूरा करने में मुझे बड़ी सहायता दी है।

वैशाख पूर्णिमा
सं० १९८३
लाहौर.

विद्वानोंका अनुचर
शंकरदेव

सब तरह की संस्कृत और हिन्दी पुस्तकों
के मिलने का ठिकाना—

मेहरचन्द लक्ष्मणदास
अध्यक्ष संस्कृत पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार
लाहौर ।



॥ ओ३म् ॥

वृन्दसतसई ।



दोहा ।

श्रीगुरुनाथ प्रभावते, होत मनोरथ सिद्धि ।
घन ते ज्यों तरु बेलिदल, फूल फलनकी वृद्धि ॥ १ ॥

श्री गुरुवर के प्रभाव से मनोरथ (दिलकी इच्छायें) पूरे होते हैं, जैसे बादल से वृक्ष, बेल, पत्ते, फूल और फलों की बढ़ती होती है ॥१॥

किये वृन्द प्रस्तावके, दोहा सुगम बनाय ।
उक्ति अर्थ दृष्टांत करि, दृढ़कै दिये बताय ॥ २ ॥

वृन्द कवि ने प्रस्तावों के लिये सरल दोहे बनाकर कहावतों (उक्ति) अर्थ और उदाहरणों से उन्हें दृढ़ करके बता दिया है ॥२॥

भाव सरस समझत सबै, भले लगैं यह भाय ।
जैसे अवसरकी कही, बानी सुनत सुहाय ॥ ३ ॥

रस से सने हुवे (सरस) विचार सब लोग समझते हैं और समझे हुवे अच्छे लगते हैं, जैसे मौके पर कही हुई बात सुनते हुए अच्छी लगतीहै ॥३॥

नीकीपै फीकी लगै, बिनअवसरकी बात ।
जैसे वर्णत युद्धमें, रस शृँगार न सुहात ॥ ४ ॥

बिना मौके के कही हुई बात याद अच्छी भी हो तो भी फीकी लगती है, जैसे लड़ाई में बयान किया हुआ शृङ्गाररस (प्रेमरस) अच्छा नहीं मालूम देता ॥४॥

फीकीपै नीकी लगै, कहिये समय विचारि।
सबको मन हर्षित करै, ज्यों विवाहमें गारि॥ ५॥

समय का विचार करके यदि फीकी बात भी कहें तो अच्छी लगती है, जैसे शादी के मौके पर दी हुई गाली (सीठने) सबके मनको खुश करती है॥ ५॥

रागी अवगुण ना गनत, यहै जगतकी चाल।
देखो सबही श्यामको, कहत ग्वाल सब लाल॥ ६॥

प्रेमी पुरुष दोष को नहीं देखता, यही संसार की रीति है। देखिये सब ही ग्वाल बाल श्याम (कृष्ण यानि काला) को लाल कहते हैं। (यहां पर श्याम और लाल के दो २ अर्थ हैं। श्याम कृष्ण महाराज को भी कहते हैं और काले रंग को भी। लाल लाल रंग को भी कहते हैं और प्यारे बच्चे को भी)॥ ६॥

जो जाको प्यारो लगै, सो तिहिं करत बखान।
जैसे विषको विष भखी, मानत सुधा समान॥ ७॥

जिसको जो प्यारा लगता है वह उसी का ही बयान करता है। जैसे ज़हर खाने वाला ज़हर को अमृत के बराबर मानता है॥ ७॥

जो जाको गुण जानहीं, सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है, काग निबौरी लेत॥ ८॥

जो जिसका गुण जानता है, वह उसी की इज्ज़त करता है। कोयल आम को ही लेती है और कव्वा नीम के फल को ही लेता है॥८॥

अन उद्यमही एक को, यों हरि करत निबाह।
ज्यों अजगर भख आनिकै, निकसत वाही राह॥ ९॥

परमात्मा बिना उद्यम वाले का भी निर्वाह कर देते हैं। जैसे अजगर का भोजन आकर उसी रास्ते से आनिकलता है। (जहां वह पड़ा हुआ हो) (तात्पर्यः—प्रभु दयावान हैं किसी को भूखा नहीं मारते)॥ ९॥

हलन चलनकी सकति है, तौलौं उद्यम ठानि।

अजगर ज्यों मृगपति वदन, मृगन परतु है आनि ॥ १० ॥

जब तक हिलने जुलने की ताकत है तब तक कोशिश करनी चाहिये। जैसे अजगर की तरह शेर के मुंह में हरिण स्वयं आकर नहीं पड़ते ॥१०॥

कहा होय उद्यम किये; जो प्रभुही प्रतिकूल।
जैसे निपजे खेतको, करै शलभ निरमूल ॥ ११ ॥

यदि परमात्मा ही उलटे पड़ जायं, तो परिश्रम करने से ही क्या होता है। जैसे पैदा हुवे खेत को टिड्डी जड़ से उखेड़ डालती है अर्थात् नष्ट कर देती है ॥ ११ ॥

जाही ते कछु पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास ॥ १२ ॥

उसी की आशा करनी चाहिये जिससे कुछ प्राप्त होसके। सूखे हुवे तालाब पर जाने से प्यास कैसे बुझ सकती है? ॥ १२ ॥

जो जाही को ह्वै रह्यो, सो तिहिं पूरे आस।
स्वाति बूंद बिन सघन में, चातक मरत पियास ॥ १३ ॥

जो जिसका होकर रहता है वही उसकी आशा पूरी करता है। बादलों की बहुतायत में भी (बादलों से भरे आशाश में भी) चातक स्वाति की बूंद के बिना प्यासा मरता है। (स्वाति एक नक्षत्र का नाम है) ॥ १३ ॥

गुनही तऊ मंगाइये, जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तऊ, आग न आनत कौन ॥ १४ ॥

उसी गुणवान् को मंगाना चाहिये जो जीवन के लिये सुख का भवन अर्थात् भंडार हो। आग यद्यपि नगर को जला देती है तो भी आग को कौन नहीं लाता? (गुणवान् का सदा आदर करना चाहिये)। ॥ १४ ॥

रस अनरस समझे न कछु, पढ़ै प्रेमकी गाथ।
बीछु मंत्र न जानही, सांप पिटारे हाथ ॥ १५ ॥

जो रसिकता और शुष्कता को तो समझता नहीं और पढ़ता है प्रेम की कहानियां, वह ठीक उस मनुष्य की तरह है जो बिच्छू के तो मन्त्र को जानता

नहीं और सांप की पेटी में हाथ डालता है । (इसका मतलब यह है कि जिसका हृदय रसिक नहीं उसे प्रेम की कहानियां कुछ आनन्द नहीं दे सकतीं) ॥ १५ ॥

कैसे निबहै निबल जन, कर सबलनसों वैर ।
जैसे बसि सागर विषे, करत मगरसों वैर ॥ १६ ॥

निर्बल मनुष्यों की बलवान् मनुष्यों से शत्रुता करके कैसे निभ सकती है । जैसे यदि कोई समुद्र में रहकर मगरमच्छ से वैर करता हो (उसकी मगर के साथ कैसे निभ सकती है ?) ॥१६॥

कीजे समझ न कीजिये, बिन विचारि व्यवहार ।
आय रहत जानत नहीं, शिरको पायन भार ॥ १७ ॥

समझ कर करना चाहिये, बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिये । पांव आते जाते सिर के भार को नहीं जानते । (तात्पर्यः—संसार में इस तरह व्यवहार करना चाहिये कि जिससे दूसरों को कष्ट न पहुंचे) ॥१७॥

दीयो अवसरको भलो, जासो सुधरै काम ।
खेती सूखे बरसबो, घनको कौने काम ॥ १८ ॥

समय पर दिया हुआ, और जिससे काम सुधरे वही भला होता है । खेती के सूखने पर बरसा हुवा बादल किस काम का ? ॥ १८ ॥

अपनी पहुंच विचारिकै, करतब करिये दौर ।
तेते पांव पसारिये जेती लंबी सौर ॥ १९ ॥

अपनी पहुंच (शक्ति) का विचार करके जल्दी से कोई काम करना चाहिये । उतने पांव फैलाने चाहियें जितनी लम्बी रज़ाई हो ॥१९॥

पिसुन छल्यौ नर सुजनसों, करत विश्वास न चूकि ।
जैसे दाध्यो दूधको, पीवत छांछहिं फूंकि ॥ २० ॥

दुष्ट मनुष्य से धोखा खाया हुआ आदमी भले पुरुष पर भी भूलकर विश्वास नहीं करता, जैसे दूध से जला हुआ छाछ को भी फूंक मार कर पीता है ॥ २० ॥

प्राण तृषातुर के रहैं, थोरे हूं जलदान।
पीछे जलभर सहस घट, डारे मिलत न प्राण ॥ २१ ॥

प्यास से व्याकुल (तृषातुर) मनुष्य के प्राण थोड़े जल के देने से भी रह जाते हैं। परन्तु पीछे (प्राण चले जाने पर) पानी से भरे हज़ार घड़े डालने पर भी प्राण नहीं मिलते ॥ २१ ॥

विद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पंखाको पौन ॥ २२ ॥

विद्या और धन बिना परिश्रम के कहो कौन पाता है ? जैसे पंखे की हवा बिना पंखा डुलाये नहीं मिलती ॥ २२ ॥

बनती देख बनाइये, परन न दीजै खोट।
जैसी चले बयार तब, तैसी दीजे ओट ॥ २३ ॥

जो बात बनती दीखे उसे बनायें और उस में खोट न पड़ने दें। जब जैसी वायु चले वैसी ही ओट (पाठ) देनी चाहिये ॥२३॥

ओछे नरकी प्रीतिकी, दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल, घटत घटत घट जाय ॥ २४ ॥

खोटे आदमी के प्रेम की रीति बता दी। जैसे थोड़े जल वाले तालाब का पानी घटते २ अन्त में बिलकुल घट जाता है। (तात्पर्यः—बुरे और नीच आदमियों की मुहब्बत कभी स्थिर नहीं रहती) ॥२४॥

अनमिलती जोई करत, ताहीको उपहास।
जैसे योगी योगमें, करत भोगकी आस ॥ २५ ॥

बेमेल की जो बात करता है उस की हंसी होती है। जैसे यदि कोई योगी योगाभ्यास में विषय भोग की आशा करे ॥२५॥

बुरे लगत सिखके वचन, हिये विचारो आप।
करुवे भेषज बिन पिये, मिटै न तनको ताप ॥ २६ ॥

शिक्षा की बातें बुरी लगती हैं, स्वयं हृदय में विचार करें। परन्तु बिना कड़वी दवाई के पिये शरीर का ज्वर (बुख़ार) कभी नहीं मिटता ॥२६॥

बड़े बड़ेनको दुख हरत, पैन नीच यह थाप ।
घन मेटत पै ना सरित, गिरिवर ग्रीषम ताप ॥ २७ ॥

बड़े ही बड़ों का दुःख हरते हैं, नीच (छोटे) नहीं, यह निश्चय है । पहाड़ की गर्मी को बादल मिटाता है नदी नहीं ॥ २७ ॥

गुरुता लघुता पुरुषकी, आश्रय वशते होय ।
करी बूंदमें विन्ध्यसों, दर्पणमें लघु सोय ॥ २८ ॥

मनुष्य का बड़ापन और छोटापन आश्रय वश से ही होता है । जैसे हाथी जल में विन्ध्याचल (एक पहाड़ का नाम) के बराबर मालूम होता है और वही शीशे में छोटा होजाता है ॥ २८ ॥

रहे समीप बड़ेनके, होत बड़ो हित मेल ।
सबही जानत बनत है, वृक्ष बराबर बेल ॥ २९ ॥

बड़े आदमियों के पास रहने से बड़ा उपकार और मेल जोल होता है । सभी जानते हैं कि बेल वृक्ष के बराबर ही बढ़ती है ॥२९॥

उपकारी उपकार जग, सबसों करत प्रकाश ।
ज्यों कटु मधुरे तरु मलय, मलयज करत सुवास ॥ ३० ॥

परोपकारी आदमी संसार में सबके साथ उपकार करता है, जैसे चन्दन मलय पर्वत के कड़वे और मीठे सब वृक्षों को सुगन्धित करता है ॥ ३० ॥

होय बड़ेमत हूजिये, कठिन मलिन मुखरंग ।
मर्दन बंधन छति सहत, कुच इन गुननि प्रसंग ॥ ३१ ॥

बड़े होकर कठोर और मैले मुंह तथा रंग वाले न होवो । स्तन इन्हीं गुणों के प्रसङ्ग से (कारण) मर्दन किये जाने, बांधे जाने और क्षति (नाखूनों से छीले जाने) को सहते हैं ॥ ३१ ॥

कहूं जाहु नाहिन मिटत, जो विधि लिख्यो लिलार ।
अंकुश भय करिकुंभ कुच, भये तहां नख मार ॥ ३२ ॥

विधि (भाग्य) ने जो कुछ माथे पर लिख दिया है, वह कहीं-जाने पर भी नहीं मिटता । हाथी के मस्तक को सदा अंकुश का भय है, और स्तनों

पर नाखूनों की मार होती है ॥ ३२ ॥

विधि रूठै तूठै कवन, को करि सकै सहाय।
वनदव भय जल गत नलिन, तहं हिम देत जराय ॥ ३३ ॥

भाग्य ही यदि रूठ जाय तो कौन सन्तुष्ट कर सकता है और कौन सहायता कर सकता है ? जंगल की आग के डर से जल में गये हुवे कमल को वहां बर्फ जला देती है (नष्ट कर देती है) ॥ ३३ ॥

प्रेम पगत वरजी न क्यों, अब वर्जत बेकाज।
रोम रोम विष रम रह्यो, नाहिं न बनत इलाज ॥ ३४ ॥

प्रेम में डूबती को क्यों न रोका। अब रोकना बेफाइदा है। जब बाल बाल में जहर भर रहा हो तो कुछ इलाज नहीं बनता ॥ ३४ ॥

फेर न ह्वै है कपटसों, जो कीजै व्योपार।
जैसे हांडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥ ३५ ॥

धोखे से फिर २ व्यापार यदि करें तो नहीं होता। (अर्थात् व्यापार में धोखा नहीं देना चाहिये) जैसे लकड़ी की हांडी दूसरी बार नहीं चढ़ती ॥३५॥

करिये सुख को होत दुख, यह कहो कौन सयान।
वा सोनेको जारिये, जासों टूटत कान ॥ ३६ ॥

करैं तो सुख के लिये और होवे दुःख, कहो यह कौनसा सयानापन है (बुद्धिमत्ता है)। क्या उस सोने को जड़ना चाहिये जिससे कान भी टूट जांय। (तात्पर्यः—काम वह करना चाहिये जिससे कष्ट न पहुंचे) ॥ ३६ ॥

नैना देत बताय सब, हियको हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कह देत ॥ ३७ ॥

हृदय की सब भलाई और बुराई को आंखें बता देती हैं, जैसे शीशा अच्छे और बुरे को कह देता है ॥ ३७ ॥

अति परचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय ॥ ३८ ॥

बहुत परिचय से नाखुशी नफरत और बेइज्जती होती है। जैसे मलय पहाड़

की भीलनी चन्दन को जला देती है (क्योंकि चन्दन सदा उसके सामने रहता है इस लिये वह उसकी कीमत को नहीं समझती)॥ ३८ ॥

सो ताके अवगुण कहे, जो जेहि चाहै नाहिं।
तपत कलङ्की विष भर्‌यो, विरहिन शशिहि कहाहिं॥ ३९॥

जो जिस को नहीं चाहता वह उस के दोषों को कहता है। जैसे चन्द्रमा वियोगियों (विरहिन) से जलाने वाला, कलंकी और ज़हर से भरा हुआ कहा जाता है॥ ३९ ॥

सुखदाई ये देत दुख, सो सब दिन को फेर।
शशि सीतल संयोग में, तपत विरह की बेर॥ ४०॥

सुख देने वाला यदि दुःख देता है तो यह दिनों का फेर है। चन्द्रमा संयोग (मिलाप) में ठंडा मालूम देता है और वही जुदाई के समय जलाने वाला लगता है॥ ४० ॥

विधि के विरचे सुजन हूं, दुर्जन सम ह्वै जात।
दीपहि राखे पवन ते, अंचल वहै बुझात॥ ४१॥

विधि से (अर्थात् जन्म से) पैदा किये हुवे अच्छे आदमी भी बुरों की तरह हो जाते हैं। आंचल जो हवा से दीवे की रक्षा करता है स्वयं उसे बुझा भी देता है॥ ४१ ॥

जासो जैसे भाव सो, तैसे मानत ताहि।
शशिहि सुधाकर कहत कोउ, कहत कलंकी आहि॥ ४२॥

जिस का जैसा भाव होता है वह उसे (दूसरे को) वैसा ही मानता है। कोई तो चन्द्रमा को सुधाकर (यानि अमृत का घर) कहता है और कोई कहता है कि यह कलंक वाला है॥ ४२ ॥

आप बुरे जग है बुरो, भला भले जग जानि।
तजत बहेरा छांह सब, गहत आम की आनि॥ ४३॥

जो आप बुरे हैं उन्हें सारा संसार बुरा लगता है और जो अच्छे हैं उन्हें सारा संसार अच्छा मालूम देता है। बहेड़े की छाया को सब छोड़ देते हैं

और आम की छाया का आकर आश्रय लेते हैं ॥ ४३ ॥

सो जु सयाने एक मति, यह-कहवत है सांच ।
कांचहि पांच कहै न कोऊ, पांच हि कहै न कांच ॥ ४४ ॥

सौ मनुष्यों की, यदि वे सयाने हैं, एक ही राय होती है; यह कहावत सच्ची है। कोई भी कांच को पांच नहीं कहता और पांच को कांच नहीं कहता ॥ ४४ ॥

भले बुरे सब एक से, जोलौं बोलत नाहिं ।
जानि परतु है काक पिक, ऋतु बसन्त के मांहि ॥४५ ॥

अच्छे और बुरे जब तक बोलते नहीं, एक से ही होते हैं। कौवा और कोयल बसन्त ऋतु में ही पहिचाने जाते हैं (अर्थात् अपनी अपनी बोली से ही जाने जाते हैं) ॥ ४५ ॥

भाव भाव की सिद्धि है, भाव भाव में भेव ।
जो मानौं तो देव हैं, नहीं भीत को लेव ॥ ४६ ॥

विचार विचार में सिद्धि है (लक्ष्य की पूर्ति है) और विचार २ में भेद है। यदि मानें तो देवता हैं और नहीं तो दीवार का लेप ही है। (तात्पर्यः- एक आदमी पत्थर में देवता का विश्वास करके भी उद्देश्य पर पहुंच सकता है। और दूसरा उसे केवल पत्थर की दीवार की तरह ही मान सकता है)।४६।

निष्फल श्रोता मूढ पै, कविता बचन विलास ।
हाव भाव ज्यों तीय कै, पति आंधे के पास ॥४७॥

मूर्ख श्रोता (सुनने वाले) पर काव्य के वचनों का विस्तार व्यर्थ है (कोई फल नहीं लाता) जैसे आंखों से हीन पति पर उसकी स्त्री के हाव भाव (कटाक्ष) आदि (व्यर्थ हैं) ॥ ४७ ॥

भले बुरे जहं एक से, तहां न बसिये जाय ।
ज्यों अन्यायपुर में बिके, खल गुर एकै भाव ॥ ४८ ॥

जहां अच्छे और बुरे एक से समझे जाते हों वहां जाकर नहीं बसना चाहिये, जैसे अन्यायपुर में, (ऐसे नगर में जहां इन्साफ नहीं) जहां पर खल

और गुड़ एक ही भाव पर बिकते हों ॥ ४८ ॥

न करि नाम रंग देखि सम, गुण बिन समझे बात ।
गात धात गोदूध ते, सेंहुड के ते घात ॥ ४९ ॥

गुणके बिना समझे, एक जैसे नाम और रंग को देखकर कोई बात नहीं करनी चाहिये। गौ के दूध से शरीर में वीर्य बढ़ता है और थूहर के दूध से जखम पैदा होजाता है। (गौ के दूध और थूहर के रस को दोनों को दूध कहते हैं और दोनों का रंग सफेद है परन्तु गुणों में बड़ा अन्तर है) ॥४९॥

बिन गुण कुल जाने बिना, मान न करि मनुहारि ।
ठगत फिरत शठ जगत को, भेष भक्त को धारि ॥ ५० ॥

गुण और कुल को बिना जाने हुवे किसी का आदर नहीं करना चाहिये। जैसे साधु का भेस धारण कर दुष्ट आदमी संसार को धोखा देरहे हैं ॥५०॥

हित हूं की कहिये न तिहि, जो नर होत अबोध ।
ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाये क्रोध ॥५१॥

उस मनुष्य को जो ज्ञानवान नहीं (अर्थात् मूर्ख को) उसकी भलाई की बात भी नहीं कहनी चाहिये। जैसे उस आदमी को जिसका नाक कटा हुवा है शीशा दिखाने से गुस्सा ही आता है ॥५१॥

अति अनीति लहिये न धन, जो प्यारो मन होय ।
पाये सोने की छुरी, पेट न मारत कोय ॥ ५२ ॥

दौलत की वजह से बहुत जुल्म न करे यदि वह मन को प्यारा भी हो। कोई भी सोने की छुरी को पाकर पेट में नहीं मारता ॥५२॥

मूरख को पोथी दई, बांचन को गुण गाथ ।
जैसे निर्मल आरसी, दई अंध के हाथ ॥ ५३ ॥

गुणों की कथा बांचने के लिये मूर्ख मनुष्य के हाथ में दी हुई पुस्तक (ठीक ऐसी है) जैसे अन्धे के हाथ में दिया हुवा साफ़ शीशा ॥५३॥

मधुर वचन ते जात मिट, उत्तम जन अभिमान ।
तनिक सीत ज़लसों मिटे, जैसे दूध उफान ॥ ५४ ॥

अच्छे आदमियों का अभिमान मीठे वचनों के कहने से मिट जाता है। जैसे थोड़े से ठण्ढे पानी से दूध का उभरना (बन्द होजाता है) ॥५४॥

जाते रक्षा होत है, ह्वै ताही सों घात।
कहा करै कोऊ जबै, बारि ककरिया खात ॥ ५५ ॥

जिससे रक्षा होती है उसी से कभी २ हानि भी हो जाया करती है। कोई क्या करे जब कि बाड़ ही ककड़ी को खाने लगे। (खेत की रक्षा के लिये खेत के चारों ओर जो कांटेदार टहनियां रखी जाती हैं उसे बारि अर्थात् बाड़ कहते हैं) ॥५५॥

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय ॥५६॥

सभी बलवान् के मददगार होते हैं कोई भी कमजोर का सहायक नहीं। वायु आग को तो खूब भड़काती है और वही वायु दीवे को बुझा देती है ॥५६॥

कछु बसाय नहिं सबल सों, करै निबल सों जोर।
चलै न अचल उखारि तरु, डारति पवन झकोर ॥ ५७ ॥

बलवान् के साथ तो कुछ बस नहीं चलता परन्तु कमजोर के साथ जोर लगाते हैं। पहाड़ तो हिलता नहीं, हवा उसके ऊपर के वृक्षों को ही उखाड़ डालती है ॥५७॥

समै समझ के कीजिये, काम वहै अभिराम।
सैंधव मांग्यो जेंवते, घोरा को कह काम ॥ ५८ ॥

वही काम अच्छा होता है जो समय का विचार कर के किया जाय। भोजन करते समय सैंधव मांगने पर घोड़े का क्या काम। (सैन्धव नमक को भी कहते हैं और घोड़े को भी। भोजन करते समय यदि सैंधव मांगा जाय तो नमक लाना चाहिये न कि घोड़ा, और सवारी के समय घोड़ा लाना चाहिये न कि नमक) ॥५८॥

जो जाही सों रच रह्यो, तिहि ताही सों काम।
जैसे किरवा आक को, कहा करै बसि आम ॥ ५९ ॥

जो जिससे रल मिलकर रहता है उसका उसी से ही काम होता है। जैसे आक का कीड़ा आम के वृक्ष में बसकर क्या करेगा? ॥५९॥

जिय चाहत सोई मिलै, जियत भलो हिय लागि।
प्यासो चाहत नीर को, कहा करै लै आगि ॥ ६० ॥

जिसको दिल चाहता है वहीं यदि मिल जाय तो जीते जी हृदय को अच्छा लगता है। प्यासा आदमी जो पानी को चाहता है आग लेकर क्या करेगा? ॥ ६० ॥

जिय पिय चाहे तुम करो, घन चन्दन उपचार।
रोग कछू औषध कछू, कैसे होत करार ॥ ६१ ॥

ऐ प्यारे! जितना चाहो कपूर चन्दन से इलाज करो, (कुछ लाभ नहीं) यदि बीमारी कुछ है, और उसकी दवाई कुछ और ही है, तो कैसे आराम हो सकता है? ॥ ६१ ॥

बिरह तपन पिय बातते, उठत चौगनी जागि।
जल के सींचे बढत है, ज्यों सनेह की आगि ॥ ६२ ॥

प्यारे की बातों से जुदाई की आग चार गुनी होजाती हैं जैसे तेल या घी (सनेह) वाली आग, पानी देने से ज्यादा बढ़ जाती है ॥६२॥

रोष मिटै कैसे कहत, रिस उपजावन बात।
ईंधन डारे आग में, कैसे आग बुझात॥ ६३ ॥

क्रोध पैदा करने वाली बात से क्रोध कैसे मिट सकता है? आग में लकड़ी डालने से आग कैसे बुझ सकती है? ॥ ६३ ॥

अति हट मत कर हठ बढै, बात न करि है कोय।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥ ६४ ॥

अधिक हठ (जिद्द) न कर, हठ बढ़ने पर कोई बात भी नहीं करता। ज्यों २ कम्बल भीगता जाता है त्यों २ भारी होता जाता है ॥ ६४ ॥

लालच हूं ऐसो भलो, जासों पूरै आस।
चाटे हूं कहुं ओस के, मिटै काहु की प्यास ॥ ६५ ॥

लोभ उतना ही अच्छा है जिससे आशा पूरी होजाय। क्या कभी ओस के चाटने से किसी की प्यास बुझती है ? ॥ ६५ ॥

विषहूं ते सरसी लगे, रिस में रस की भाख।
जैसे पित्तज्वरीन को, करवी लागति दाख ॥ ६६ ॥

क्रोध में प्रेमरसकी बात जहर की तरह बुरी लगती है जैसे पित्तके बुखार वालों को दाख कड़वी लगती है ॥ ६६ ॥

जो जेहि भावे सो भलौ, गुण को कछु न विचार।
तज गजमुक्ता भीलनी पहिरति गुंजा हार ॥ ६७ ॥

जो जिसके दिलको अच्छा लगता है उसके लिये वही अच्छा है, गुणों का कुछ विचार नहीं होता। भीलनी हाथी की मणि (एक बहुमूल्य चीज) को छोड़कर रत्तियों (गुंजा) के हार को पहिनती है। (गजमुक्ता के गुणों का विचार न करके थोड़ी कीमत वाली रत्तियों की माला को भीलनी पहिनती है, क्योंकि वही उसके दिलको भाती है) ॥ ६७ ॥

हरि रस परि हरि विषय रस, संग्रह करत अजान।
जैसे कोऊ करत है, छांडि सुधा विषपान ॥ ६८ ॥

अनजान आदमी परमात्मा के (भक्ति) रस को छोड़कर विषयों के रस को इकठा करता है (अर्थात् विषय भोगों में फंसा रहता है) जैसे कोई अमृत को छोड़कर जहर का पान करता हो ॥ ६८ ॥

कुल मारग छांडत न कोउ, होहु वृद्धि कै हानि।
गज इक मारत दूसरो, चढ़त महावत आनि ॥ ६९ ॥

चाहे लाभ हो या हानि, अपने वंश की रीति को कोई नहीं छोड़ता। हाथी एक को मारता है परन्तु दूसरा महावत आकर सवार होजाता है। (किसी न किसी महावत ने हाथी पर आही बैठना है परन्तु हाथी प्रायः महावत को मार देता है जो कि उसके कुलकी रीति है चाहे उसे लाभ हो या हानि) ॥ ६९ ॥

जासों निभहै जीविका, करिये सो अभ्यास।

वेश्या पाले शील तो, कैसे पूरे आस ॥ ७० ॥

जिससे अपना रोजगार निभे उसी का अभ्यास करना चाहिये । यदि वेश्या, शील अर्थात् लज्जा को रक्खे तो उसकी आशा कैसे पूरी होसकती है?७०

दुष्ट न छांडे दुष्टता, कैसे हू सुख देत ।
धोये हू सौ बेर के, काजर होय न सेत ॥ ७१ ॥

नीच आदमी अपनी नीचता नहीं छोड़ता चाहे कितना भी उसे आराम दो । सौबार धोने से भी कज्जल कभी सफेद नहीं होता ॥७१॥

कहुं अवगुण सोइ होत गुण, कहुं गुण अवगुण होत ।
कुच कठोर त्यों हैं भले, कोमल बुरे उदोत ॥ ७२ ॥

कहीं दोष भी गुण होजाता है और कहीं गुण दोष बनजाता है । स्तन जितने कठोर (सख्त) हों उतने ही अच्छे हैं परन्तु वही यदि कोमल (नर्म) हों तो बुरे मालूम देते हैं । (कठोरता दोष है परन्तु स्तनों में वही गुण हो जाता है और कोमलता गुण है परन्तु वही स्तनों में दोष बनजाता है ॥७२॥

अशुभ करत सोइ होत शुभ, सज्जन वचन अनूप ।
स्रवन पिता दिय दशरथहिं, शाप भयो वर रूप ॥ ७३ ॥

अच्छे पुरुषों के वचन, जो बेनजीर होते हैं, यदि बुराई करने वाले भी हों तो उनसे भलाई ही होती है । श्रवण के पिता ने दशरथ को शाप दिया, परन्तु वही वर की शकल में होगया ॥ ७३ ॥

एक भलो सब को भलो, देखो सबद विवेक ।
जैसे सत हरिचंद के, उधरे जीव अनेक ॥ ७४ ॥

शब्दों का विचार कर के देखो (किन शब्दों का) 'कि एक अच्छे आदमी से सबकी भलाई होती है' । जैसे सत्यवादी हरिश्चन्द्र के कारण अनेक जीवों का उद्धार हुवा ॥ ७४ ॥

एक बुरे सब को बुरो, होत सबल के कोप ।
अवगुण अर्जुन के भयो, सब छत्रिन को लोप ॥ ७५ ॥

बलवान् आदमी के क्रोधके कारण एक के बुरा होने से सबका बुरा होता

है। अर्जुन के दोष होने से सब क्षत्रियों का नाश होगया ॥ ७५ ॥

बड़ैन पै जाच्यों भलौ, यदपि होत अपमान।
गिरत दन्तगज डाढ ते, गज के तऊ बखान ॥ ७६ ॥

बड़े आदमियों से मांगना अच्छा है चाहे बेइज्जती ही क्यों न हो। हाथी की दाढ़से यदि उसका दांत गिरभी जाय तो उसकी प्रशंसा होती है।७६

अवगुण करता और ही, देत और को मार।
जो पहुंचे नहीं रुद्र को, जारत विरहनि मार ॥ ७७ ॥

दोष तो कोई और करता है परन्तु वह दोष मारता किसी और को ही है। जो कामदेव शिवतक नहीं पहुंच सकता वह बियोगियोंको मार देता है।७७

मान होत है गुणनि ते, गुण विन मान न होय।
शुक शारिक राखैं सबै, काग न राखे कोय ॥ ७८ ॥

गुणों से आदर होता है, बिना गुणोंके मान नहीं होता। तोते और मैना को सभी रखते हैं, कौवे को कोई नहीं रखता ॥ ७८ ॥

आडम्बर तज कीजिये, गुण संग्रह चित धाय।
छीर रहत न बिकै गऊ, आनिय घंट बँधाय ॥ ७९ ॥

दिल से आडम्बर (दिखावे) को छोड़कर गुणों को इकट्ठा करो। बिना दूधवाली गौ नहीं बिकती, चाहे घण्टी लाकर (उसके गले में) बांध दो ॥७९॥

जैसो गुण दीनो दई, तैसो रूप निबन्ध।
ये दोनों कहँ पाइये, सोनौ और सुगन्ध ॥ ८० ॥

विधाता ने जैसा गुण दिया हो वैसे ही यदि रूप (सूरत) भी दिया हो! ये दोनों यदि कहीं पाये जावें तो सोने में सुगन्ध है ॥८०॥

अभिलाषी इक बात के, तिनमें होय विरोध।
काज राज के राज सुत, लरत भिरत करि क्रोध ॥ ८१ ॥

एकही बात की जो लोग इच्छा करने वाले होते हैं, उन में खटपट (विरोध) रहती है। राज्य (बादशाहत) के कारण राजा के पुत्र आपस में क्रोध कर के लड़ते भिड़ते हैं ॥ ८१ ॥

जो जाको चाहै भलो, सो ताही की पीर ।
नीर बुझावै आग को, सोखे वाहि समीर ॥ ८२ ॥

जो जिसका भला चाहता है उसको उसी की पीड़ा होती है । पानी आग को बुझाता है और उसको (पानी को) वायु सुखादेती है । (वायु आगको भड़काती है इस लिये उसका मित्र है और उसके शत्रु अर्थात् जलको सुखादेती है) ॥ ८२ ॥

अहित किये हू हित करैं, सज्जन परम सधीर ।
सोखे हूं सीतल करै, जैसे नीर समीर ॥ ८३ ॥

अच्छे आदमी बड़े धैर्य वाले होते हैं, बुराई किये जाने पर भी भलाई करते हैं । जैसे पानी सूख जाने पर भी वायुको ठण्डा करदेता है ॥८३॥

ह्वै सहाय हित हू करै, तऊ दुष्ट दुख देत ।
जैसे पावक पवन को, मिले जराये लेत ॥ ८४ ॥

सहायक होकर चाहे भलाई भी करो फिर भी दुष्ट आदमी दुःख ही देते हैं, जैसे आग, वायु को मिलने पर जला देती है ॥ ८४ ॥

अपनी अपनी ठौर पर, शोभा लहत विशेष ।
चरण महावर है भलो, नैनन अंजन रेख ॥ ८५ ॥

अपने २ स्थान पर ही सब विशेष शोभा को पाते हैं । पांव में मेंहदि अच्छी लगती है, और आंखों में सुरमे की रेखा ॥ ८५ ॥

जो चाहो सोई करो, मेरो कछु न कहाव ।
जंत्री के कर जंत्र है, जो भावै सो बजाव ॥ ८६ ॥

जो चाहो सो करो मुझे कुछ नहीं कहना । यंत्र वाले के हाथ में यंत्र है, जो उसकी इच्छा हो बजावे ॥ ८६ ॥

जाको जैसो उचित तिहिं, करिये सोई विचारि ।
गीदर कैसे ल्याइ है, गज-मुक्ता गज मारि ॥ ८७ ॥

जो जिसको मुनासिब है वही उसे विचार कर करे । गीदड़ हाथी को मार कर कैसे हाथी की मणि को ला सकता है ॥ ८७ ॥

जुदे न जैसे लहत हैं, मिले विरंगहु रंग।
काथ संग चूनो परत, होत लाल मिल संग॥ ८८॥

बिना रंग के पदार्थ अलग २ रह कर रंग को नहीं प्राप्त करते। कत्थे के साथ चूना पड़ता है और साथ मिलकर ही लाल हो जाता है॥ ८८॥

नहिं इलाज देख्यो सुन्यो, जासों मिटत सुभाव।
मधु पुट कोटिक देत तऊ, विष न तजत विष भाव॥ ८९॥

कोई ऐसा इलाज न देखा है न सुना है जिससे स्वभाव मिटजाय। शहद के करोड़ पुट (भावना = कपड़मट्टी करके आग में उसे पकाना) देने पर भी ज़हर ज़हरपन को नहीं छोड़ता॥ ८९॥

जाको जासों मन लग्यो, सो तिहिं आवे दाँय।
भाल भस्म विष मुंड शिव, तौहूं शिवा सहाय॥ ९०॥

जिस का जिस से मन गल गया वह उसी के दाईं तरफ़ आता है अर्थात् पासआता है। शिवके माथे पर राख होते हुवे और गले पर ज़हर होते हुवे भी पार्वती उसकी सहायक है॥ ९०॥

होय कछू समझे कछू, जाकी मति विपरीत।
कनक भखी जैसे लखै, श्याम सेत को पीत॥ ९१॥

जिस की बुद्धि उलटी होती है वह, होता कुछ है और समझता कुछ है। जैसे धतूरा खाने वाला काले और सफेद रंग को पीला देखा करता है॥ ९१॥

प्रेम निवाहन कठिन है, समझ कीजियो कोय।
भांग भखन है सुगम पै, लहर कठिन ही होय॥ ९२॥

प्रेम का निभाना कठिन है चाहे कुछ भी समझ कर करें। भांग का खाना तो सरल है परन्तु उसकी लहर कठिन ही होती है॥ ९२॥

कोउ विन देखे बिन सुने, कैसे कहै विचार।
कूप भेख जाने कहा, सागर को विस्तार॥ ९३॥

कोई किसी बात को बिना देखे और सुने हुवे विचार कर कैसे कह

सकता है । कुंएं का मेंडक समुद्र के फैलाव को क्या जाने ॥ ९३ ॥

देव सेव फल देत है, जाको जैसो भाय ।
जैसे मुख करि आरसी, देखौ सोइ दिखाय ॥ ९४ ॥

जिसकी जैसी भावना होती है उसको देवता वैसा ही फल देते हैं । जैसे जिस प्रकार का मुंह बनाकर शीशे की तरफ देखो, शीशा वैसाही दिखाता है९४

कुल बल जैसो होय सो, तैसी करि हैं बात ।
बणिक पुत्र जाने कहा, गढ लेवे की घात ॥ ९५ ॥

जिसका जैसा कुल बल (खान्दान से आया हुवा बल) होता है वह वैसी ही बात करता है । बनिये का लड़का किला फतह करने की घात को क्या जाने ॥ ९५ ॥

जाको ओर न जाइये, कैसे मिलि है सोइ ।
जैसे पश्चिम दिशि गये, पूरब काज न होय ॥ ९६ ॥

जिसकी ओर न जाया जाय वह कैसे मिल सकता है ? जैसे पश्चिम की दिशा में जाने से पूर्व दिशा का काम नहीं होता ॥ ९६ ॥

जैसो बन्धन प्रेम को, तैसो बंध न और ।
काठहि भेदै कमल कौं, छेद न निकरैं भौर ॥ ९७ ॥

जैसा प्रेम का बन्धन (जन्जीर) है वैसा और कोई बन्धन नहीं । भौंरा लकड़ी को तो छेद देता है परन्तु कमल में उससे छेद नहीं किया जाता ॥९७॥

जे उदार ते देत हैं, रीझत जिहिं तिहिं काल ।
गाल बजाये हू करे, गौरी कंत निहाल ॥ ९८ ॥

जो उदार होते हैं वे उसी समय प्रसन्न होकर कुछ देदेते हैं शिव महादेव गाल बजाने पर भी निहाल (खुश) कर देते हैं ॥ ९८ ॥

अपनी अपनी गरज सब, बोलत करत निहोर ।
बिन गरजै बोलै नहीं, गिरिवरहू को मोर ॥ ९९ ॥

अपनी २ गरज (आवश्यकता, जरूरत) होने पर सब कोई बोलते हैं और खुशामद करते हैं । पहाड़ का मोर बिना (बादल के) गर्जे नहीं बोलता ।

क्योंकि उसकी गर्ज उसी समय पूरी होनी होती है) ॥ ९९ ॥

जो सब ही को देत है, दाता कहिये सोइ।
जलधर वर्षत सम विषम, थल न विचारत कोइ॥ १०० ॥

जो सबको देता है उसी को दाता कहिये। बादल, बर्षा करते समय, समतल और ऊंचे नीचे स्थान का कोई विचार नहीं करता ॥१००॥

तिन सो विमुख न हूजिये, जे उपकार समेत।
मोर ताल जल पान करि, जैसे पीठ न देत॥ १०१ ॥

जो उपकारी हैं उनसे बिरुद्ध न होइये। जैसे मोर तालाब का पानी पीकर (तालाब की तरफ) पीठ नहीं करता ॥ १०१ ॥

जो समझै जा बात को, सो तिहिं कहै विचार।
रोग न जानै ज्योतिषी, वैद्य ग्रहण को चार॥ १०२ ॥

जो जिस बात को समझता है वही उसे विचार कर कहता है। ज्योतिषी रोग को नहीं जानता और वैद्य ग्रह इत्यादि की गति को ॥ १०२ ॥

नवल नेह आनँद उमँग, दुरै न मुख चख और।
तब ही जान्यो जात है, ज्यों सुगन्ध को चौर॥ १०३ ॥

नया प्रेम और प्रसन्नता की लहर नहीं छिपती, उस में मुख और आंख और ही तरह के होजाते हैं। जैसे सुगन्ध का चोर तभी २ (जल्दी ही) जाना जाता है ॥ १०३ ॥

प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिलते न मिलाय।
दूध दही ते जमत है, कांजी ते फट जाय॥ १०४ ॥

स्वभाव के मिलने पर ही दिल जुडते हैं (प्रकृति) न मिलने पर (दिलभी) नहीं मिलते। दूध दही से ही जमता है और कांजी से फट जाता है ॥ १०४ ॥

बात कहन की रीति में, है अन्तर अधिकाय।
एक बचन ते रिस बढै, एक बचन ते जाय॥ १०५ ॥

बात कहने के तरीके में बहुत भेद है। एक बचन से क्रोध बढ़ जाता

है और एक बचन से नष्ट होजाता है॥ १०५॥

एक वस्तु गुण होत है, भिन्न प्रकृति के भाय।
भटा एक को पित करत, करत एक को बाय॥ १०६॥

अलग २ प्रकृति वाले को एक ही बस्तु भिन्न २ गुण करती है। बैंगन एक को तो पित्त करता है और एकको बाई कर देता है॥ १०६॥

सुख में होत शरीक सो, दुख शरीक सो होय।
जाको मीठो खाइये, कटुक खाइये सोय॥ १०७॥

जो सुख में शरीक होता है उसे दुःख में भी शरीक होता पड़ता है। जिसका मीठा खायें उसका कड़वा भी खाना पड़ता है॥ १०७॥

स्वारथ के सब ही सगे, बिन स्वारथ कोउ नाहिं।
जैसे पक्षी सरस तरु, निरस भये उडि जाहिं॥ १०८॥

खुदगर्जी (स्वारथ) के सभी मित्र हैं, बिना स्वार्थ के कोई नहीं। जैसे पक्षी रसवाले (हरे भरे) वृक्ष से, उसके बिना रस के होजाने पर (सूख जाने पर) उड़कर चले जाते हैं॥ १०८॥

जो लायक जिहिं भांति को, तासों तैसी होय।
सज्जन सो न बुरी करै, दुर्जन भली न कोय॥ १०९॥

जो जिस तरह का लायक होता है, उस से वैसा ही होता है। जो नेक है वह कभी बुराई नहीं करता और कोई भी नीच भलाई नहीं करता॥१०९॥

सुख बीते दुख होत है, दुख बीते सुख होत।
दिवस गये ज्यों निसि उदित, निसिगत दिवस उदोत ११०

आनन्द के बीतने पर कष्ट होता है और दुःख के बीतने पर सुख होता है। जैसे दिन के समाप्त होने पर रात होती है और रात के बीतने पर दिन का उदय होता है। (किसी के दिन एक से नहीं गुजरते)॥ ११०॥

जो भाखै सोई सही, बडे पुरुष मुख बानि।
है अनंग ताको कहैं, महारूप की खानि॥ १११॥

बड़े आदमी मुख से जो बचन कहें, वही ठीक है। कामदेव है तो

बिना अंग के, और उसे कहते हैं खूबसूरती की खान ॥ १११ ॥

दोषभरी न उचारिये, यदपि यथारथ बात।
कहे अन्ध को आंधरौ, मान बुरौ सतरात ॥ ११२ ॥

ठीक होने पर भी दोष से भरी हुई बात न कहिये। अन्धे को यदि अन्धा कहो तो वह उसे बुरा मानकर क्रोधित होता है ॥ ११२ ॥

पर घर कबहुं न जाइये, गये घटत है ज्योति।
रवि-मण्डल में जात शशि, छीन कला छबि होति ॥११३॥

दूसरे के घर कभी नहीं जाना चाहिये, जाने से रोशनी (प्रभाव या मान) घट जाती है। सूर्य के चक्कर में चन्द्रमा के जाने से उसकी कला और ज्योति नष्ट होजाती है ॥ ११३ ॥

औरहि ते कोमल प्रकृति, सज्जन परम दयाल।
कौन सिखावत है कहो, राजहंस कौं चाल ॥ ११४ ॥

अच्छे आदमी बड़े कोमल स्वभाव के, और जन्म से ही दयावान् होते हैं। कहो राजहंस को कौन चाल सिखाता है ॥ ११४ ॥

सज्जन अंगीकृत किए, ताकों लेहिं निवाहि।
राखि कलंकी कुटिल शशि, तउ शिव तजत न ताहि ११५

अच्छे पुरुष स्वीकार करने पर उससे निभा लेते हैं। (उसे अलग नहीं करते) कलंकवाले और टेढ़े चन्द्रमा को एक दफे रखकर फिर भी उसे महादेव नहीं छोड़ते ॥ ११५ ॥

जिन पण्डित विद्या तजहु, धनि मूरख अवरेख।
कुलजा शील न परिहरै, कुलटा भूषित देख ॥ ११६ ॥

ऐ विद्वान्! मूर्ख को दौलतमन्द देखकर विद्या को न छोड़। अच्छे वंश में पैदा हुई २ स्त्री, खराब चरित्र वाली (वेश्या) स्त्री को गहनों से सजा हुवा देखकर अपने अच्छे स्वभाव को नहीं छोड़ देती ॥ ११६ ॥

एक दशा निबहै नहीं, जनि पछतावहु कोय।
रविहू की इक दिवस में, तीन अवस्था होय ॥ ११७॥

कोई भी पछतावा न करें, एकसी हालत किसी की नहीं गुजरती। एक दिन में सूर्य की भी तीन हालतें होती हैं ॥ ११७ ॥

होय शुद्ध मिटि कलुषता, सत संगति को पाय।
जैसे पारस को परस, लोह कनक ह्वै जाय ॥११८॥

अच्छे पुरुषों की संगति को पाकर मनुष्य शुद्ध होजाता है और उसकी अज्ञानता मिट जाती है। जैसे लोहा पारस पत्थर को छूकर सोना होजाता है ११८

बूह्म बनाये बन रहे, ते फिर और बनैन।
कान कहत नहीं बैन ज्यों, जीभ सुनत नहीं बैन ॥११९॥

विधाता से बनाये हुये बने रहते हैं। वे फिर और तरह के नहीं बनते। जैसे कान वचन नहीं कहते और जीभ बचन नहीं सुनती ॥ ११९ ॥

जाहि पर्यो जैसो व्यसन, ता बिन रहत न सोय।
सुरा सुरापी ना तजै, जदपि विकल गत होय ॥ १२० ॥

जिसको जैसा व्यसन पड़ जाता है वह उसके बिना नहीं रह सकता। शराब पीने वाला यद्यपि टेढ़ी मेढ़ी चाल वाला होजाता है फिर भी शराब को नहीं छोड़ता ॥ १२० ॥

जे चेतन ते क्यों तजैं, जाकौ जासों मोह।
चुम्बक के पीछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह ॥ १२१ ॥

जिसको जिससे मोह है ऐसे चेतन प्राणी उसे क्यों छोड़ें। (चेतन प्राणी उसे नहीं छोड़ते जिससे उन्हें स्नेह होता है) क्योंकि अचेतन (जिस में जीव नहीं) लोहा भी चुम्बक के पीछे लगा फिरता है ॥ १२१ ॥

घटति बढति सम्पति सुमति, गति अरहट की जोय।
रीती घटिका भरति है, भरी सु रीती होय ॥ १२२ ॥

ऐ बुद्धिमान पुरुष! धन घटता बढ़ता रहता है जैसे कि अरहट की गति होती है। खाली लोटकी भरजाती है और भरी हुई अच्छी तरह से खाली होजाती है ॥ १२२ ॥

प्रापति तैसी होति है, जिहिं जैसी लाभाइ।

भाजनमित भरि सरित में, जलभरि भरि लै जाइ ॥१२३॥

जिसको जितना लाभ होसकता है उसे उतनी प्राप्ति होजाती है । जैसी ही नाप का बर्तन हो वह नदी में उतना ही जल भर भर कर ले जाता है॥१२३॥

उत्तम जन की होड करि, नीच न होत रसाल ।
कौवा कैसे चल सकै, राजहंस की चाल ॥ १२४ ॥

उत्तम पुरुष से जिद्द करके नीच आदमी रस वाला या गुणवान् नहीं हो सकता । कौवा कैसे राजहंस की चाल चल सकता है ? ॥ १२४ ॥

उत्तम जन के संग में, सहजै ही सुख भास ।
जैसे नृप लावे अतर, लेत सभा जन बास ॥ १२५ ॥

उत्तम पुरुष की संगति में सहज में ही सुख मालूम होने लगता है । जैसे राजा यदि अतर लगावे तो सारी सभा के लोग खुशबू लेते हैं ॥ १२५ ॥

या जग की विपरीत गति, समझी देखि सुभाव ।
कहैं जनार्दन कृष्ण को, हर को शंकर नांव ॥ १२६ ॥

इस संसार की उलटी चाल है यह अच्छी तरह से समझ करके देख लिया है । कृष्ण (जो रसिक है) को जनार्दन अर्थात् मनुष्यों को पीड़ा देने वाला कहते हैं और हर को जो सृष्टि का हरण करने वाला है शंकर अर्थात् कल्याण कारी कहकर सिर नवाते हैं ॥ १२६ ॥

भले लगै सब कौ कहौ, कोऊ हित के बैन ।
पिय आगम के काग वच, विरहिनि को सुख दैन ॥१२७॥

कोई भी हित के बचन हों सबको कहे हुवे भले लगते हैं । प्यारे के आने को कहने वाले कौवे के बचन भी विरहिणी (वियोगनी) को सुख देने वाले होते हैं ॥ १२७ ॥

जो जाके हित की कहै, सो ताके अभिराम ।
पिय आगम भाखी भलौ, वायस पिक किहिं काम ॥१२८॥

जो भलाई की बात कहे वही उसको प्यारा होता है । प्यारे की आमद को कहने वाला कौवा अच्छा, और कोयल किस काम की (यदि वह भलाई

की बात अर्थात् प्यारे की आमद को न कहे) ॥ १२८ ॥

को कहै हित की कहै, है ताही सों हेत।
सबै उड़ावत काग को, पै विरहिनि बलि देत ॥ १२९ ॥

कोई कहे, परन्तु कहे भलाई की, तो उसी से प्यार होजाता है। सभी कौवे को डंडे से उड़ा देते हैं परन्तु विरहिणी उसे भोजन (बलि) देती है ॥१२९॥

को चाहे अपनो तऊ, जा संग लहिये पीर।
जैसे रोग शरीर ते, उपजत दहत शरीर ॥ १३२ ॥

उसे कौन चाहता है जिससे दुःख को प्राप्त होवें, चाहे वह अपना ही क्यों न हो। जैसे बीमारी शरीर से पैदा हुई२शरीर को ही जला देती है१३०

एक विरानो ही भलो, जिहिं सुख होत शरीर।
जैसे बन की औषधी, हरत रोग की पीर ॥ १३१ ॥

एक पराया ही अच्छा है जिससे शरीर को सुख होवे। जैसे जंगल की औषधी रोग की पीड़ा को हर लेती है ॥ १३१ ॥

जो पावे अति उच्च पद, ताको पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लों, अस्त होतु है भान ॥ १३२ ॥

जो बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त कर लेता है उसका गिरना स्वाभाविक है। जैसे सूर्य दोपहर तक खूब तपकर गरूब होजाता है ॥ १३२ ॥

अनुचित अतिबल आपनो, कहे अनादर होय।
संग्रह कियो न नृप दुहुनि, रुक्म गयो पति खोय ॥१३३॥

अनुचित तौरपर अपने अत्यन्त बल को जतलाने से अपमान होता है। दोनों (दुर्योधन और अर्जुन) राजाओं ने रुक्म को न लिया और वह मालिक को खोकर चला गया ॥ १३३ ॥

कलुष भाव देखे जहां, उत्तम जन न रहाय।
जैसे पावस तजि अनत, राजहंस उड़ि जाय ॥ १३४ ॥

उत्तम पुरुष जहां निन्दित ख्यालात देखते हैं वहां नहीं रहते। जैसे वर्षा ऋतु में राजहंस एक स्थान को छोड़कर दूसरी जगह उड़कर चले जाते हैं१३४

जो चाहै सोई लहै, यों सुख होइ शरीर ।
ज्यों प्यासे जिय को मिलै, निर्मल सीतल नीर ॥ १३५ ॥

जिस वस्तु को पुरुष चाहता है वही यदि मिल जाय तो शरीर में आनन्द होता है। जैसे प्यासे जीव को साफ और ठण्डा पानी मिल जाय ॥ १३५ ॥

मन-भावन के मिलन बिन, यों जिय होत उदास ।
ज्यों चकोर की दिन दशा, चकवा चन्द प्रकास ॥१३६॥

मन को भाने वाले के न मिलने से चित्त इस तरह उदास होता है जैसे चकोर पक्षी की दिन के समय दशा होती है, और चकवा की जिस तरह चन्द्रमा के सोजले में ॥ १३६ ॥

जिहिं प्रसंग दूषन लगै, तजिये ताको साथ ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥१३७॥

जिसके संग से दोष लग जाय उसका साथ छोड़ दो। शराब बेचने वाले (कलाली) के हाथ में रखे दूध को सारा संसार शराब समझता है ॥१३७॥

जाके संग दूषन दुरै, करिये तिहिं पहिचानि ।
जैसे समझै दूध सब, सुरा अहीरी पानि ॥१३८॥

जिसके संग से दोष भाग जाय उससे परिचय करो। जैसे ग्वालिन (अहीरी) के हाथ में रखी शराब को सब लोग दूध समझते हैं ॥ १३८ ॥

जिहिं देखे लांछन लगै, तासों दृष्टि न जोर ।
ज्यों कोऊ चितवै नहीं, चौथ चंद की ओर ॥१३९॥

जिसके देखने से कलंक लगता हो उस तरफ नजर न कर। जैसे कोई भी चौथ के चांद की तरफ नहीं देखता ॥ १३९ ॥

मूरख गुन समझै नहीं, तौ न गुनी में चूक ।
कहा भयो दिन को विभौ, देखै जो न उलूक ॥१४०॥

मूर्ख यदि गुण को नहीं समझता तो गुणवान् मनुष्य में कोई कसूर नहीं। क्या हुवा यदि उल्लू दिन के स्वामी (सूर्य) को न देखे ॥ १४० ॥

खल जन सों कहिये नहीं, गूढ कबहुं करि मेल ।

यों फैले जग माहिं ज्यों, जल पै बून्द कि तेल ॥१४१॥

दुष्ट आदमी से मेल करके कभी गूढ़ बात न कहें । वह बात दुनियां में ऐसे फैल जाती है जैसे पानी पर तेल की बूंद ॥ १४१ ॥

एकहि गुण ऐसो भलो, जिहिं अवगुण छिप जात ।
नीरद को ज्यों रंग बद, बरसत ही मिट जात ॥१४२॥

एक ही ऐसा गुण अच्छा है जिससे दोष छिप जाता है । जैसे बादल का बुरा (काला) रंग बरसते ही मिट जाता है ॥ १४२ ॥

मूढ तहां ही मानिये, जहां न पण्डित होय ।
दीपक को रवि के उदै, बात न पूछै कोय ॥१४३॥

मूर्ख को वहीं मानता है जहां कोई पण्डित नहीं । सूर्य के उदय होने पर दिये की कोई बात नहीं पूछता ॥ १४३ ॥

बिन स्वारथ कैसे सहै, कोऊ करुवे बैन ।
लात खाय पुचकारिये, जु होय दुधारू धैन ॥१४४॥

बिना मतलब के कोई कड़वे बचन कैसे सहे । यदि दूध देने वाली गाय हो तो लात खाकर भी उसे पुचकारते हैं ॥ १४४ ॥

सज्जन तजत न सजनता, किन्हेहु दोष अपार ।
ज्यों चन्दन छेदै तऊ, सुरभित करहि कुठार ॥१४५॥

बहुत बुराई किये जाने पर भी अच्छे आदमी अपनी अच्छाई नहीं छोड़ते । जैसे कुल्हाड़ा चन्दन को काटता है फिरभी वह उसे (कुल्हाड़े को) सुगन्धित ही करता है ॥ १४५ ॥

दुष्ट न छांडै दुष्टता, पोखै राखै ओट ।
सरपहि केतो हित करो, चुपै चलावै चोट ॥१४६॥

नीच आदमी नीचता नहीं छोड़ता चाहे उसे पाला पोसा जाय और ओट (आश्रय) में रखा जाय । सांप के साथ कितनी भी भलाई करो फिर भी वह चुपचाप चोट करता ही है ॥ १४६ ॥

धन संचय किहिं काम को, खाउ खरच हरि प्रीति ।

बंध्यो गंधीलो कूप जल, कढै बढै इहिं रीति ॥१४७॥

धन का इकट्ठा कर के रख छोड़ना किस काम का । खाओ खर्च करो और परमात्मा में प्रीति करो । कुंएं का जल बँधा हुवा (अर्थात् रुका हुवा) गन्दा है और यदि निकले तो इस रीति से बढ़ता है ॥ १४७ ॥

करे बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ ।
रोपे बिरवा आक को, आंम कहां ते होइ ॥१४८॥

करे तो बुराई और चाहे सुख, कैसे कोई यह पावे । बोवे तो आक का पौदा तो वह आम कैसे होसकता है ? ॥ १४८ ॥

होय बुराई ते बुरौ, यह कीनो निरधार ।
खाड खनैगो और को, ताको कूप तयार ॥१४९॥

बुराई से बुरा ही होता है, यह निश्चय कर दिया गया है । और के लिये यदि गड्ढा खोदेगा उसके लिये कूआं तय्यार होजायगा ॥ १४९ ॥

दिये सहस गुण देत सो, पावै यह सच बात ।
बीज देत तिहिं करसिरै, और देत तिहिं दात ॥१५०॥

यह बात सच है कि मनुष्य देने पर दिये से हजार गुणा अधिक पाता है । जो बीज देता है उसे दाता (परमात्मा) एक और भुट्टा (सिट्टा) दे देता है ॥ १५० ॥

एक भेष के आसरे, जाति बरन छिपि जात ।
ज्यों हाथी के पांव में, सब को पांव समात ॥१५१॥

एक भेस के आश्रय से जात और वर्ण (जात पांत आदि सब) छिप जाते हैं । जैसे हाथी के पांव में सब के पांव समा जाते हैं ॥ १४१ ॥

जाको जहं स्वारथ सधै, सोई ताहिं सुहात ।
चोर न प्यारी चांदनी, जैसे कारी रात ॥१५२॥

जिसका जहां मतलब पूरा होता है उसको वहीं अच्छा लगता है । चोर को चांदनी ऐसी प्यारी नहीं जैसी काली रात ॥ १५२ ॥

जैसी ही भवितव्यता, तैसी बुद्धि प्रकाश ।

सीता हरिवे ते भयो, रावण कुल को नाश ॥१५३॥

जैसी भावी होती है वैसे ही बुद्धि का प्रकाश होता है । सीता के हरने से रावण के वंश का नाश होगया ॥ १५३ ॥

निहचै भावी कौं कहो, प्रतीकार जो होइ ।
तौ नल से हरिचन्द से, विपत न भरते कोइ ॥१५४॥

निश्चय मानो, यदि यह कहो कि भावी को रोकने का उपाय होता, तो नल और हरिश्चन्द्र जैसे राजा कष्ट न उठाते ॥१५४॥

कछु सहाय न चलि सकै, होनहार के पास ।
भीष्म युधिष्ठिर से तहां, भो कुरुवंश विनाश ॥१५५॥

भावी के पास कोई सहायना नहीं चल सकती । जहां भीष्म और युधिष्ठिर से विद्यमान थे वहां भी कौरवों का नाश हो ही गया ॥ १५५ ॥

अति ही सरल न हूजिये, देखो ज्यों वनराय ।
सींधे सींधे छेदिये, बांकौ तरु बच जाय ॥१५६॥

बहुत सीधे न होवो । देखो जैसे जंगल में सीधे २ वृक्ष काटे जाते हैं और ठेढ़े बच जाते हैं ॥ १५६ ॥

बहुतन को न विरोधिये, निबल जानि बलवान ।
मिल भखि जाहिं पिपीलका, नागहि नग के मान ॥१५७॥

बलवान्, निर्बल जानकर बहुतों का विरोध न करे । चिऊंटियां मिलकर पहाड़ के माप के (बहुत बड़े) सांप को भी खा जाती है ॥ १५७ ॥

बहुतनि बल मिलि बल करै, करैं जु चाहैं सोय ।
तिनकन की रसरी करी, करी निबन्धन होय ॥१५८॥

बहुतों का बल मिल कर यदि बल लगाये (तो मनुष्य) जो चाहें कर डालें । तिनकों से बनाई रस्सी हाथी का भी बन्धन होजाती है ॥ १५८ ॥

दुर्जन के संसर्ग ते, सज्जन लहत कलेश ।
ज्यों दशमुख अपराध ते, बंधन लह्यो जलेश ॥१५९॥

नीच आदमी के साथ से भला आदमी भी कष्ट उठाता है । जैसे रावण

के अपराध से समुद्र बन्धन को प्राप्त हुआ ॥ १५९ ॥

सुजन कुसंगति संगते, सज्जनता न तजंत।
ज्यों भुजंग गण संग तउ, चंदन बिष न धरंत ॥१६०॥

अच्छे आदमी बुरी संगत से भी अपनी सज्जनता को नहीं छोड़ते। जैसे सांपों के समूह का साथ होते हुए भी चन्दन जहर को धारण नहीं करता।१६०।

कष्ट परेहू महत जन, नेकु न होत मलान।
ज्यों ज्यों कंचन ताइये, त्यों त्यों, निर्मल बान १६१॥

कष्ट पड़ने पर बड़े आदमी जरा भी मलिन नहीं होते। जैसे २ सोने को तपाओ वैसे २ उसकी चमक निर्मल होती जायगी ॥ १६१ ॥

जे उत्तम ते असम सौं, धरत न रिस मन माहिं।
घन गरजै हरि हुंकरै, स्यार बोल सुनि नाहिं ॥१६२॥

जो उत्तम हैं वे अपने से छोटे के प्रति मन में क्रोध या ईर्ष्या नहीं रखते शेर बादलके गर्जने पर हुंकार करताहै, गीदड़ के बोलने को सुनकर नहीं१६२

खल बंचत नर सुजन को, नहिं विश्वास करेहि।
डहक्यो उड़ प्रतिविम्वते, मुकता हंस न लेहि ॥१६३॥

दुष्ट आदमी से ठगा जाकर मनुष्य अच्छे आदमी का भी विश्वास नहीं करता। तारों की परछाई से धोखा खाया हुआ हंस मोतियों को भी नहीं लेता ॥ १६२ ॥

मिथ्या भाषी सांचहू, कहे न मानै कोय।
भांड पुकारे पीर बश, मिस समझै सब कोय ॥१६४॥

झूठ बोलने वाला सच भी कहे तो कोई नहीं मानता। भंड (मखौलिया) यदि पीड़ा के कारण भी पुकारे तो सब कोई बहाना समझता है ॥ १६४ ॥

सदा समय बलवान पै, नाहिं पुरुष बलवान।
कावरि लरि गोपी लई, विरथ भये रथवान ॥१६५॥

हमेशा समय बलवान् होता है पुरुष बलवान् नहीं होता। काबरियों

(एक पहाड़ी जाति) ने लड़कर गोपियों को ले लिया और रथवान् (अर्जुन) रथ से विहीन होगये ॥ १६५ ॥

कन कन जोरे मन जुरै, खाते निबरै सोय।
बूंद बूंद ज्यों घट भरै, टपकत बीते तोय ॥१६६॥

थोड़ा २ जोड़ने से मनों जुड़ जाता है, खाने से वही समाप्त होजाता है। बूंद २ से जैसे घड़ा भर जाता है और टपकने से वही खाली होजाता है १६६

थोरे ही गुण ते कहुंक, प्रकट होत जग माहिं।
एकहि कर ते जय करी, करी (रे) सहस कर नाहिं ।१६७।

कहीं २ थोड़े से गुण से भी मनुष्य संसार में प्रकट होजाता हैं । एक ही हाथ से (सूंड से) हाथी जय प्राप्त कर लेता है और हजार हाथ नहीं होते ॥ १६७ ॥

ऊंचे बैठे ना लहैं, गुण बिन बड़पन कोइ।
बैठो देवल शिखर पर, वायस गरुड़ न होइ ॥१६८

कोई भी बिना गुणों के ऊंचे स्थान पर बैठने से बड़प्पन नहीं हासिल कर लेता। मन्दिर की चोटी पर बैठा हुवा कौवा गरुड़ नहीं होजाता ॥१६८॥

दुख पाये बिनहूं कहूं, सुख पावत है कोइ।
सहै बेध बंधन सुमन, तब गुण संयुत होइ ॥१६९॥

क्या कोई कहीं विना दुःख पाये हुवे सुख पाता है ? फूल छेदे और बन्धे जाने को सहता है फिर कहीं गुण (धागे) के साथ संयुक्त होता है ॥१६९॥

निपट अबुध समझै कहां बुधजन वचन विलास।
कबहूं भेक न जानहिं, अमल, कमल की वास ॥१७०॥

बिल्कुल मूर्ख, बुद्धिमान् पुरुषों के वचनों को कैसे समझ सकता है। मेंडक कभी भी स्वच्छ कमल की सुगन्ध को नहीं जानता ॥ १७० ॥

विनसत गुणसत गुणिन के, अगुण पुरुष के पास।
ज्यों अंजन गिरि चन्द कर, नेक न होत प्रकास ॥१७१॥

गुणी आदमी के सैंकड़ों गुण भी गुण विहीन आदमी के पास नष्ट होजाते

हैं। जैसे सुरमे के पहाड़ पर चन्द्रमा की किरणों का प्रकाश थोड़ा सा भी नहीं होता ॥ १७१ ॥

सांच झूठ निर्णय करै, नीति-निपुण जो होय।
राजहंस बिन को करै, क्षीर नीर को दोय ॥१७२॥

सच और झूठ का वही निश्चय करता है जो नीति में होशियार हो। राजहंस के बिना दूध और पानी को पृथक् २ कौन कर सकता है? ॥१७२॥

इक समीप बसि अहित कर, इक हित कर बसि दूर।
हंस विनासै कमल दल, अमल प्रकाशै सूर ॥ १७३ ॥

एक पास रहकर भी बुराई करता है और एक दूर रह कर भी भलाई करता है। हंस (समीप रह कर) कमल के पत्तों को नष्ट कर देता है और सूर्य (दूर रहने पर भी) उनको स्वच्छ प्रकाशित कर देता है ॥ १७३ ॥

दोषहि को उमहै गहै, गुण न गहै खल लोक।
पिये रुधिर पय ना पिये, लागि पयोधर जोंक ॥ १७४ ॥

दुष्ट आदमी दोष को ही उमंग के साथ ले लेता है गुण को ग्रहण नहीं करता। जोंक स्तन में भी लगकर लहू को पीता है दूध को नहीं पीता।२७४

भलौ न होई दुष्ट जन, भलौ कहै जो कोय।
विष मधुरौ मीठौ लवन, कहै न मीठो होय ॥ १७५ ॥

दुष्ट आदमी, यदि उनको कोई भला भी कहे तो भले नहीं हो जाते। जहर मीठा है, नमक मीठा है इसतरह कहनेसे वे वास्तव में मीठे नहीं हो जाते ॥ १७५ ॥

कारज करत असाधु के, सब में साधु कहाय।
जैसे शीत हेमन्त को, बन गन देत जराय ॥ १७६ ॥

सब लोगों में कहलाते तो साधु हैं परन्तु काम असाधुओं (दुष्टजनों) कैसे करते हैं। जैसे हेमन्त ऋतु को कहते तो शीत (ठण्डा) हैं परन्तु वह कमल के बन को जला डालती है ॥१७६॥

एक उदर वाही समय, उपज न इक से होय।

जैसे कांटे बेर के, बांके सीधे जोय॥ १७७॥

एक ही पेट में और एकही समय में पैदा हुवे २ भी एक से नहीं होते। जैसे बेरके कांटे टेढे और सीधे होते हैं॥ १७७॥

हरत दैवहू निबल अरु, दुर्बल ही के प्रान।
बाघ सिंह को छांडिकै, देत छाग बलिदान॥ १७८॥

दैव भी कमजोर और बलहीन ही के प्राण लेता है। बघियार और शेर को छोड़कर सब कोई बकरे को ही बलिदान करता है॥ १७८॥

जिहि जासों मतलब नहीं, ताकी ताहि न चाह।
ज्यों निस्प्रेही जीव के, तृण समान सुरनाह॥ १७९॥

जिससे जिसका मतलव नहीं उसकी उसको चाह नहीं होती। जैसे निस्पृह (जिसे किसी किसी तरह की ख्वाहिश नहीं) प्राणी के लिये इन्द्र भी तिनके की तरह है॥ १७९॥

जे पर ते पर यह समझ, अपनो होय न कोय।
पालै पोषै काग तऊ, पिक सुत काग न होय॥ १८०॥

यह समझलो कि जो पराये हैं वे पराये ही हैं अपना कोई नहीं होता। कौवा यद्यपि पालता पोसता है फिर भी कोयल का बचा कौवा नहीं हो जाता॥ १८०॥

दीजै सीख अजान को, मानै सीख सुजान।
टारहि ता जन मारिये, ज्यों कांपे के कान॥ १८१॥

अनजान आदमी को यदि शिक्षा दीजाय तो उसे मानता विद्वान् ही है। उसे मनाकरना ही उसे मारनाहै जैसे कांपते हुवे आदमीके कान पकड़ने १८१

उद्यम कबहु न छांडिये, पर आशा के मोद।
गागरि कैसे फोरिये, उनयो देखि पयोद॥ १८२॥

दूसरे की उमीद की खुशी में अपना उद्योग कभी न छोड़ो। बादल को उमड़ा हुवा देखकर गागर कैसे फोड़ी जा सकती है॥ १८२॥

कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर।

समय पाय तरुवर फलै, केतक सींचो नीर ॥ १८३ ॥

काम धीरे २ ही होता है, बेसबरे क्यों होते हो। समय परही वृक्ष फलते हैं चाहे कितना ही पानी सींचो ॥ १८३ ॥

जो पहिले कीजे जतन, सो पाछे फल दाय।
आग लगे खोदै कुंवा, कैसे आग बुझाय ॥ १८४ ॥

यदि पहले से ही कोशिश की जाय, तो वह पीछे फलदेती है। आगलगने पर खोदेहुवे कुंए से आग कैसे बुझ सकती है ॥ १८४ ॥

होत सिद्धि जैसे समय, तैसो ही अभिलाख।
कौड़ी बिन जातन लियो, करी लेत दे लाख ॥ १८५ ॥

जैसे समय जैसा काम होता है वैसी ही इच्छा भी होती है। जो हाथी कौड़ी बिना भी नहीं लिया था, वही हाथी लाख रुपया देकर भी ले लिया जाता है ॥ १८५ ॥

क्यों कीजै ऐसो जतन, जाते काज न होय।
परबत पै खोदै कुँवा, कैसे निकसे तोय ॥ १८६ ॥

क्यों ऐसा परिश्रम कियाजाय जिससे काम न हो। पहाड़पर कुंआ खोदने से पानी कैसे निकल सकता है ॥ १८६ ॥

सांची सम्पति और की, और भोगवै आय।
कण संग्रह चैंटीन को, क्यों तीतर चुगि जाय ॥ १८७ ॥

दूसरे की इकट्ठी की हुई दौलत और ही आकर भोगता है। जैसे चिऊंटियों से दाना २ इकट्ठा किया हुवा तीतर चुगजाता है ॥ १८७ ॥

खयो छोटो ही भलो, जासों गरज सिराय।
कीजे कहा पयोधि को, जाते प्यास न जाय ॥ १८८ ॥

खड्डा छोटा ही अच्छा जिससे गर्ज पूरी हो जाय। उस समुद्र को क्या करें जिससे प्यास न बुझे (क्योंकि समुद्र का पानी खारा होता है) ॥१८८॥

श्रम ही ते सब मिलत है, बिन श्रम मिलै न काहिं।
सीधी अंगुरी घी जम्यो, क्यों हू निकरै नाहिं ॥ १८९ ॥

परिश्रम से ही सब कुछ मिलता है विना परिश्रम के कुछ नहीं मिलता। जमा हुवा घी सीधी अंगुली से किसी तरह भी नहीं निकलता (क्योंकि अंगुली टेढ़ी करने का परिश्रम नहीं किया) ॥ १८९ ॥

कहिये बात प्रमाण की, जासों सुधरै काज।
फीको थेरे लौन ते, अधिकै खारो नाज॥ १९० ॥

तोल के बात कहनी चाहिये जिससे काम सुधर जाय। थोड़े नमक से तो अनाज फीका होता है। और अधिक से खारा ॥ १९० ॥

कहै रसीली बात जे, बिगरी लेत सुधारि।
सरस लौन की दाल में, ज्यों निंबू रस डारि ॥ १९१ ॥

जो रसीली बात कहते हैं वे बिगड़ी हुई बात को भी सुधार लेते हैं। जैसे ज्यादा नमक वाली दाल में निम्बू का रस डालकर उसे ठीक कर लिया जाता है ॥ १९१ ॥

जो चाहै सोई करै, बड़े अशङ्कित अंग।
सब के देखत नग्न हर, धरत गौरि अरधंग ॥ १९२ ॥

जो चाहते हैं वही कुछ कर डालते हैं, बड़े आदमी निश्शंक होते हैं। सब के देखते २ नंगे शिव, पार्वती को आधे अंग पर धारण कर लेते हैं॥ १९२

बड़े सहज ही बात तें, रीझि देत बकसीस।
तुलसी दल ते विष्णु ज्यों, आक धतूरे ईस ॥ १९३ ॥

बड़े आदमी छोटी सी बात से भी खुश होकर इनाम दे देते हैं। जैसे विष्णु तुलसी के पत्ते से और महादेव आक और धतूरे से (खुश होकर निहाल कर देते हैं) ॥१९३॥

बड़े कहैं सो कीजिये, करैं सु करिये नाहिं।
हर ज्यों पंचन में फिरैं, अरु जो बिकल कहाहिं ॥ १९४ ॥

बड़े जो कुछ कहें वह करिये, जो कुछ करें वह न करना चाहिये। जैसे महादेव पांचों इन्द्रियों के रहते भी विकल (व्याकुल) कहलाते हैं (इसका मतलब यह नहीं कि हम भी पांचों इन्द्रियों के रहते व्याकुल रहें क्योंकि शिव व्याकुल

रहते हैं। उनका क्या कहना वे तो बड़े हुए) ॥ १९४ ॥

काहू किये न कीजियै, तिय जिय को विश्वास।
गौरि धरी अरधंग हर, हरि घर घर में वास ॥ १९५ ॥

किसी के करने पर, स्त्री के दिल का विश्वास न कीजिये। महादेव ने तो पार्वती को अपने आधे अंग पर धारण किया हुवा है और हरि (विष्णु) हर समय घर में ही रहते हैं (क्योंकि उन्हें अपनी २ स्त्री पर विश्वास नहीं) ॥ १९५ ॥

सुधरी बिगरै वेग ही, बिगरी फिर सुधरै न।
दूध फटै कांजी परे, सो फिर दूध बनै न ॥१९६॥

बनी हुई जल्दी ही बिगड़ जाती है और बिगड़ी हुई फिर सुधरती नहीं, कांजी के पड़ने से दूध फट जाता है और वह फिर दूध नहीं बनता ॥१९६॥

न कछु तऊ जाकी तलब, ताही की मनुहार।
सिलक समै नृप लेत हैं, तृण हू हाथ पसार ॥१९७॥

जिसकी आवश्यकता होती है, चाहे वह कुछ भी न हो, उसकी इज्जत है। राजा दांत खुजलाने के समय हाथ पसार कर तिनके को ले लेते हैं१९७

गुणी तऊ अवसर बिना, आग्रह करै न कोइ।
हियते हार उतारिये, शयन समय जब होइ ॥१९८॥

अवसर के बिना, चाहे गुणी भी क्यों न हो, कोई उसे ग्रहण नहीं करता। सोने का जब समय हो तो हृदय से हार उतार देते हैं ॥१९८॥

यद्यपि अपनो होय तउ, दुःख में करत न सीर।
ज्यों दुखती अंगुरी निकट, दुसरी ताहि न पीर ॥१९९॥

चाहे अपना भी हो फिर भी दुःख में हिस्सा नहीं लेते। जैसे दुखती हुई एक अंगुली की पीड़ा दूसरी को नहीं होती ॥ १९९ ॥

विद्या मिलै अभ्यास ते, सुजन सुभाव मिलै न।
सौत विपुल काननि करै, विपुल न ह्वै है नैन ॥२००॥

विद्या तो अभ्यास से मिल जाती है, परन्तु भले आदमियों का स्वभाव

नहीं मिलता । सौत चाहे कितनी ही चापलूसी करें परन्तु उसकी आँखें तृप्त नहीं होतीं (स्वभाव ही ऐसा हुवा) ॥ २०० ॥

काम समय पावै सुदुख, जस निर्बल के अंग ।
मर्दन खंडन सहत हैं, ज्यों अवला के अंग ॥२०१॥

काम के समय कमजोर के अंग दुःख पाते हैं । जैसे अबला (स्त्री, बलहीन) के अंग मसले जाने और काटे जाने को सहते हैं ॥ २०१ ॥

यह कहवत जैसो करै, तैसो पावै लोय ।
औरन को आंधे करै, आंधी कहियत सोय ॥२०२॥

यह कहावत सच है कि जो जैसा करता है वह वैसा फल पालेता है । औरों को अन्धा करती है, इस लिये स्वयं भी आंधी कहलाती है ॥२०२॥

छोटे नर ते रहत है, शोभायुत सरताज ।
निर्मल राखै चांदनी, जैसे पायनदाज ॥२०३॥

छोटे आदमियों से, सिर का मुकुट (यहां राजा से अभिप्राय है) शोभित रहता है । जैसे पायदान, चांदनी को साफ रखता है ॥ २०३ ॥

हित हू भलो न नीच को, नाहिन भलौ अहेत ।
चाटि अपावन तन करै, काटि श्वान दुःख देत ॥२०४॥

नीच आदमी का न तो उपकार ही अच्छा है और न अपकार ही । कुत्ता चाट कर तो शरीर को अपवित्र कर देता है और काट कर दुःख देता है ॥ २०४ ॥

सहज रसीलो होय सो, करै अहित पर हेत ।
जैसे पीडित कीजिये, ऊख तऊ रस देत ॥२०५॥

जो स्वभाव से रसीला होता है वह बुराई करने पर भी भलाई करता है । जैसे गन्ने को पीड़ित भी करो, फिर भी रस देता ही है ॥ २०५ ॥

कर विगरी सुधरै बचहि, जैसे वणिक विशेष ।
हींग मिरच जीरो कहै, हग मर जर लिख देत ॥२०६॥

हाथ से बिगड़ी हुई को बनिये सुधार कर पढ़ लेते हैं । कहते हैं हींग,

मिर्च, जीरा और लिखते हैं हग, मर, जर ॥ २०६ ॥

अरि के संग कुटुम्ब लखि, जिय उपजत है त्रास।
वैसो लगै कुठार को, तब बनराइ विनास ॥२०७॥

शत्रु के साथ अपना परिवार देखकर दिल में डर पैदा होता है। कुल्हाड़े को जब बींटा लगता है (अर्थात् लकड़ी का हत्था) तो बनका नाश होता है ॥ २०७ ॥

कबहुं कुसंग न कीजिये, किये प्रकृति की हानि।
गूंगे को समझाइबो, गूंगे की गति आनि ॥२०८॥

कभी भी बुरी संगत में न पड़ो। पड़ने से अपने स्वभाव में हानि होती है। गूंगे को गूंगे की चाल से ही समझाना पड़ता है ॥ २०८ ॥

कोऊ काहू को बुरो, करै परै तिहिं धाम।
काटे पर की नाक को, नकटी रानी नाम ॥२०९॥

कोई किसी का बुरा करे वह उसी के घर पड़ता है। दूसरे की नाक को काटती है परन्तु अपना नाम नकटी रानी (मखी की एक जात) पड़ जाता है ॥ २०९ ॥

कहा करै कोऊ जतन, प्रकृति न बदले कोइ।
सानै सदा सनेह में, जीभ न चिकनी होइ ॥२१०॥

कोई कितना यत्न करे, परन्तु स्वभाव नहीं बदलता। हमेशा घी तेल आदि में डूबी रहती है फिर भी जीभ चिकनी नहीं होती ॥ २१० ॥

यदपि सहोदर होय तऊ, प्रकृति और की और।
विख मारे ज्यावे सुधा, उपजै एकहि ठौर ॥२११॥

चाहे सगा भाई भी क्यों न हो, स्वभाव और का और ही होता है। जहर मार डालता है, अमृत जिला देता है, यद्यपि पैदा एक ही स्थान पर होते हैं ॥ २११ ॥

डरै न कब हूं दुष्ट सों, जाहि प्रेम की बानि।
भौंर न छांडे केतकी, तीखे कंटक जानि ॥२१२॥

जिसकी प्रेम की बाणी होती है वह कभी भी दुष्ट से नहीं डरता । भौंरा तेज कांटे देखकर भी केवड़े को नहीं छोड़ता ॥ २१२ ॥

बहुत किये हू नीच को, नीच स्वभाव न जात ।
छांडि ताल जल कुंभ में, कौआ चोंच भरात ॥२१३॥

बहुत करने पर भी नीच का स्वभाव नहीं जाता । तालाब के जलको छोड़कर कवा घड़े में ही अपनी चोंच भरता है ॥ २१३ ॥

चतुर क्रूर इक से गनै, जाके नाहिं विवेक ।
जैसे अबुध गंवार कै, कंच कांच है एक ॥२१४॥

जिस में विचारने की शक्ति नहीं वह चतुर और नीच को एक सा गिनता है । जैसे अनजान गंवार के लिये सोना और शीशा एक से ही हैं२१४

क्रूर न होवे चतुर नर, क्रूर कहै जो कोइ ।
मानों कांच गंवार तऊ, कंच कांच नहिं होइ ॥२१५॥

चतुर आदमी कभी क्रूर नहीं होता चाहे कोई उसे क्रूर कहे । गंवार चाहे सोना माने फिर भी शीशा सोना नहीं होसकता ॥ २१५ ॥

कैसे हू छूटत नहीं, जा में परी कुबानि ।
कागन न कोकिल ह्वै सकै, जो विधि सिखवै बानि ॥२१६॥

जिसमें बुरी बान (आदत) पड़ चुकी है वह किसी तरह भी छूटती नहीं । चाहे विधि भी बाणी सिखाये कौवा कोयल नहीं होसकता ॥ २१६ ॥

भेख बनावे सूर को, कायर सूर न सोय ।
खाल उढावे सिंह की, स्यार सिंह नहिं होय ॥२१७॥

वह डरपोक, जो शूरवीर का पहनावा बनाले वीर नहीं होजाता । गीदड़ शेर की खाल ओढ़ने से शेर नहीं होजाता ॥ २१७ ॥

धन बाढै मन बढि गयो, नाहिन मन घट होय ।
ज्यों जल संग बाढै जलज, जल घटि घटै न सोय ॥२१८॥

धन के बढ़ जाने से मन बढ़ जाता है परन्तु मन कभी घटता नहीं । जैसे जल के साथ कमल बढ़ जाता है और यदि जल घट जाय तो वह

घटता नहीं ॥ २१८ ॥

सब ते लघु है मांगिबौ, या में फेर न सार।
वलि पै याचत ही भये, वामन तन करतार ॥२१९॥

सब से नीचा काम मांगना है इस में कोई फेर नहीं । वलि राजा से मांगते ही परमात्मा, ठिगने शरीर वाले होगये ॥ २१९ ॥

बडे न लोपै लाज कुल, लोपै नीच अधीर।
उदधि रहै मरजाद में, बहै उलट नद नीर ॥२२०॥

बड़े आदमी कुल की लाज को नष्ट नहीं करते, नीच और बेसबरे लोग नष्ट कर देते हैं। समुद्र तो अपनी मर्यादा में रहता है और दरिया का पानी उलट कर बह जाता है ॥ २२० ॥

नाम भलो होत न भलो, भलो भाग जिहि भाल।
लक्षि नाम मांगत फिरै, भूखो ना भूपाल ॥२२१॥

अच्छा नाम होने से भलाई नहीं होजाती, भला वही है जिसके माथे पर किस्मत है। लक्षि (लखपति) नाम वाले मांगते फिरते हैं और 'भूखा' नाम वाला राजा है ॥ २२१ ॥

उत्तम पर कारज करै, अपनो काज विसार।
पूरे अन्त जहान को, तापरु भिक्षा धार ॥२२२॥

अपना काम भूलकर भी अच्छे आदमी दूसरे का काम करते हैं । तपस्वी भिक्षा धारण करके भी संसार के उद्देश्य को पूरा करता है ॥ २२२ ॥

देवन हू सो देव प्रभु, कहा सुरेश नरेश।
कीन्हो मीत धनेश तऊ, पहरे चर्म महेश ॥२२३॥

प्रभु (महादेव) देवों के भी देव हैं, इन्द्र और राजा उनके सामने क्या हैं। कुवेर को मित्र करके भी महादेम चर्म धारण करते हैं ॥ २२३ ॥

सब इक से होत न कहूं, होत सब न महं फेर।
कपड़ो खादी ताफतो, लोह तवा समसेर ॥२२४॥

कहीं पर भी सब एक से नहीं होते, सब में भेद होता ही है । जैसे खद्दर

और रेशमी कपड़े में और लोहे के तबे और तलवार में (भी फर्क है) ॥२२४॥

अपनो समय विचारि के, अरि जीतिये अचूक।
दिवस काग घूघहि हनै, कागहिं निसि ज्यों घूक॥२२५॥

अपना समय विचार कर के दुश्मन को विना चूके जीतना चाहिये। दिन में जैसे कौवा उल्लू को मारता है और रात में जैसे उल्लू कौवे को ॥२२५॥

छल बल समय विचारिके, अरि हनिये अनयास।
कियो अकेले द्रोण सुत, निसि पाण्डव कुल नास ॥२२६॥

धोखे, बल, और समय का विचार कर के बिना परिश्रम के शत्रु को मारिये। अकेले द्रोण के पुत्र ने रात में पांडवों के कुल का नाश किया ।२२६।

काम परे ही जानिये, जो नर जैसा होय।
विन ताये खोटो खरो, गहनो लखै न कोय ॥२२७॥

जो आदमी जैसा हो उसे काम पड़ने पर ही पहचानिये। गहने को बिना तपाये खोटा और खरा कोई नहीं पहचान सकता ॥२२७॥

जैसी संगति तैसिये, ईजत मिलि है आय।
शिर पर मखमल सेहरै, पनही मखमल पांय ॥२२८॥

जैसी संगत होगी वैसी ही इज्ज़त आकर मिलती है। सेहरे की मखमल सिर पर और जूते की मखमल पैरों में रहती है ॥२२८॥

अनघर सुघर समाज में, आय विगारै रंग।
जैसे हौज गुलाब को, बिगरै श्वान प्रसंग ॥२२९॥

अशिक्षित आदमी शिक्षित आदमियों की समाज में आकर मजा बिगाड़ देता है। जैसे गुलाब का हौज कुत्ते के साथ से बिगड़ जाता है ॥२२९॥

अनमिल सुमिल समाज सों, होत गये उठि चैन।
जैसे तिन पर देत दुख, निकसे विकसैं नैन ॥ २३० ॥

अच्छे आदमियों के समाज से बुरे, आदमी के उठ जाने से चैन पड़ती है। जैसे तिनका आंख में पड़ा हुवा दुख देता है और उसके निकलने से आंखें खिल जाती हैं ॥२३०॥

चतुर सभा में क्रूर नर, शोभा पावत नाहिं ।

जैसे बक सोहत नहीं, हंस मण्डली मांहिं ॥ २३१ ॥

चतुर आदमियों की सभा में मूर्ख आदमी शोभा नहीं पाता । जैसे बगला, हंस की मंडली में शोभायमान नहीं होता ॥२३१॥

रसिक सभा में निरस जन, होत होत रस हानि ।

जैसे भैंसा ताल परि, मलिन करत जल आनि ॥ २३२ ॥

रसीले आदमियों की सभा में शुष्क आदमी के होते हुवे रसकी हानि होती है । जैसे भैंसा तालाब में पड़कर पानी को मैला कर देता है ॥२३२॥

मिल्यो दुष्ट नाहिन भलो, उपजत मिले अहेत ।

ज्यों काँटो गड़ि देह में, अटकि खटकि दुख देत ॥ २३३ ॥

अपने साथ मिला हुत्रा दुष्ट अच्छा नहीं, उसके मिलने से बुराई पैदा होती है । जैसे कांटा शरीर में घुसकर, अटक कर खटकता है और दुःख देता है ॥ २३३ ॥

दोष धरैं निर्दोष को, जे नर होहिं सदोष ।

घटि उदार दाता कहे, जिहि न जीय संतोष ॥ २३४ ॥

दोष वाले आदमी ऐसे आदमी को, जिस में दोष नहीं, दोष देते हैं । जिस के दिल में सन्तोष नहीं वे दानी को कम उदार (संकुचित दिल वाला) बतलाते हैं ॥ २३४ ॥

होत सुसंगति सहज सुख, दुख कुसंग के थान ।

गंधी और लुहार की, बैठो देखि दुकान ॥ २३५ ॥

अच्छी संगत से स्वाभाविक आनन्द होता है, और बुरी संगत से दुःख होता है । गन्धी (गन्ध अर्थात् अतर आदि बेचने वाला) और लुहार की दुकान पर बैठकर देखलो ॥ २३५ ॥

भले बचन मुख नीच के, नाहिंन होत प्रकाश ।

हींग लसुन में ना मिले, घन कस्तूरी बास ॥ २३६ ॥

नीच आदमी के मुंह में अच्छे वचन जाहिर नहीं होते । हींग और प्याज

में कपूर और कस्तूरी की खुशबू नहीं मिलती ॥ २३६ ॥

सुधरै बिगरो कुसंग ते, सत संगति को पाय ।
बास बसी कर हींग की, जीरा सँग मिटि जाय ॥२३७॥

बुरी संगत से बिगड़ा हुवा अच्छी संगत को पाकर सुधर जाता है । हाथ में फैली हुई हींग की गंध जीरेके साथ से मिट जाती है ॥ २३७ ॥

मिले सुसंगति उच्च हू, करत नीच सों प्यार ।
खर को गंग न्हवाइये, तऊ न छांडै छार ॥ २३८ ॥

ऊंचे आदमी की संगत को पाकर भी बुरा आदमी बुरे से ही प्यार करता है । गधे को यदि गंगा में भी निहलायें फिर भी धूल और राख को नहीं छोड़ता ॥ २३८ ॥

बिगरो होय कुसंग जिहिं, कौन सकै समझाय ।
लसुन बसाये बसन को, कैसे फूल बसाय ॥ २३९ ॥

बुरी संगत में पड़कर जो बिगड़ गया हो उसे कौन समझा सकता हैं । प्याज की गंध से भरे कपड़े को फूल कैसे सुगन्धित कर सकता है ॥ २३९ ॥

है है बडे बडेन सों, होय न छोटे काज ।
गहै विटप जु फनीन्द्र को, गहि न सकै गजराज ॥ २४० ॥

बड़े आदमियों से बड़े काम ही होते हैं छोटे काम नहीं होते । वृक्ष ही सांपों को ग्रहण करता है, हाथी ग्रहण नहीं कर सकता ॥ २४० ॥

अजुगत लखि नर नीच की, काहू कौन सुहात ।
दाख बिरानी खात खर, को न देखि अनखात ॥ २४१ ॥

नीच मनुष्य की असंगत (बुरी) बात देखकर किसी को भी अच्छी नहीं लगती । पराई दाख खाते हुवे गधे को देखकर कौन नहीं गुस्से होता ॥२४१॥

छांडि सबल अरु निबल की, कबहुं न गहिये ओट ।
जैसे टूटी डार को, लगै बिलंबै चोट ॥ २४२ ॥

बलवान् को छोड़कर कमजोर की शरण न लीजिये । जैसे टूटी हुई शाख पर लटकने से चोट लगती है ॥ २४० ॥

प्रेम छके मनको हटकि, रखि न सकै कुल लाज ।
कमल नाल के तंत सों, को बांधै गजराज ॥ २४३ ॥

प्रेम से भरे दिलको कौन हटा सकता है, कुल की लाज को भी वह (प्रेमी) नहीं रख सकता । कमल की डंडी के धागे से कौन हाथी को बांध सकता है ॥ २४३ ॥

बात प्रेम की राखिये, अपने ही मन माहिं ।
जैसे छाया कूप की, बाहर निकसै नाहिं ॥ २४४ ॥

प्रेम की बात अपने मन में ही रखिये । जैसे कुंऐ की छाया उस से बाहिर नहीं निकलती ॥ २४४ ॥

ताको त्यों समझाइये, जो समझे जिहि बानि ।
बैन कहत मन अंध को, ज्यों बहिरे को पानि ॥ २४५ ॥

किसी को वैसी ही वानी से समझाइये जिससे वह समझे । जैसे अंधे को बचन कहकर, और बहरे को हाथों के इशारों से समझाया जाता है ॥२४५॥

विपत परे सुख पाइये, जो ढिग करिये भौन ।
नैन सहाई बधिर के, अंध सहाई श्रौन ॥ २४६ ॥

जो पड़ोस में बास करते हैं उन्हीं से मुसबित पड़ने पर सुख पाइये । बहरे की आंखें उसकी सहायक हैं और अन्धे के कान उसके सहायक हैं २४६

हीन अकेलो ही भलो, मिले भले नहिं दोय ।
जैसे पावक पवन मिलि, बिफरै हाथ न होय ॥ २४७ ॥

दुष्ट आदमी अकेला ही भला है, दो मिले हुवे भले नहीं । जैसे आग हवा से मिलकर फिर हाथ में नहीं आती ॥ २४७ ॥

जैसो थानक सेइये, तैसो पूरे काम ।
सिंह गुफा मुक्ता मिलै, स्यार खुरी खुर चाम ॥२४८॥

जैसे स्थान की सेवा करोगे वैसा ही काम पूरा होगा । शेर की गार में मणि मिलेगी और गीदड़ की गार में गधे की खुरी और चमड़ा ॥ २४८ ॥

बांके सीधे को मिलन, निबहै नांहिं निदान ।

गुण ग्राही तोऊ बजत, जैसे बान कमान॥ २४९॥

टेढ़े और सीधे का मिलना लाचार नहीं निभ सकता। जैसे तीर और कमान गुणग्राही (दोनों एक धागे के साथ) होने पर भी टकराते हैं २४९॥

क्यों करिये प्रापति अलप, जामें श्रम अति होय।
कौन जू गिरिवर खोद कै, चूहो काढै जोय॥ २५०॥

ऐसी थोड़ी प्राप्ति (आमदनी) क्यों करिये जिसमें मेहनत ज्यादा हो। कौन पहाड़ को खोदकर चूहे को निकालेगा॥ २५०॥

होय पहुँच जाकी जिती, ते तौ करतु प्रकाश।
रवि ज्यों कैसे करि सकै, दीपक तमको नाश॥ २५१॥

जिसकी जितनी पहुंच होती है वह उतना ही प्रकाश करता है। दीवा सूर्य की तरह अन्धेरे का नाश कैसे कर सकता है ?॥ २५१॥

जहां चतुर नाहिन तहां, मूढनि सों व्यवहार।
वर पीपर बिन होय है, ज्यों एरंड अधिकार॥ २५२॥

जहां चतुर जन नहीं वहां मूर्खों से व्यवहार करना पड़ता है। जैसे बड़ और पीपल के पेड़ के बिना एरंड का ही अधिकार होता है॥ २५२॥

होत न कारज मो बिना, यह जु कहे सुअयान।
जहां न कुक्कुट शब्द तहँ, होत न कहा विहान॥२५३॥

मेरे बिना काम नहीं होता, जो ऐसा कहता है, वह अनजान है। जहां कुक्कुड़ की आवाज नहीं वहां क्या प्रातः काल नहीं होता ?॥ २५३॥

उत्तम को अपमान अरु, करत नीच को मान।
कहा भयो जो हंस की निन्दा काग बखान॥ २५४॥

अच्छे आदमी की तो बेइज्जती और नीच आदमी का आदर करता है। क्या होजाता है यदि कौवा हंसकी निन्दा को करे॥ २५४॥

यथा जोग की ठौर बिन, नर छवि पावे नाहिं।
जैसे रत्न कथीर में, कांच कनक के मांहिं॥ २५५॥

मनुष्य उचित स्थान के बिना शोभा को नहीं पाता। जैसे जवाहरात

गुदड़ी में और शीशा सोने के बीच में (शोभा नहीं पाते) ॥ २५५ ॥

विपति बड़ेई सहि सकैं, इतर विपति तैं दूर ।
तारे न्यारे रहत हैं, गहैं राह शशि सूर ॥ २५६ ॥

बड़े आदमी ही कष्ट सहन कर सकते हैं, दूसरे लोग विपत्ति से दूर रहते हैं । तारे अलग रहते हैं परन्तु चन्द्रमा और सूर्य को ही राहु ग्रसता है ॥ २५६ ॥

ठौर छुटे ते मीत हू, है अमीत सतरात ।
रवि जल उखरे कमल को, जारत गारत जात ॥२५७॥

स्थान छूटने से मित्र भी शत्रु होकर दुःख देता हैं । सूर्य जलसे उखड़े कमल को जला और गला देता है ॥ २५७ ॥

होत बहुत धन होत तऊ, गुनयुत होत उदोत ।
स्नेह भर्‌यो दीपक तऊ, गुन बिन जोत न होत ॥ २५८ ॥

बहुत धन के होते हुवे भी गुणों से युक्त मनुष्य ही प्रकाशित होता है । तेल से भरा दीपक क्यों न हो परन्तु बत्ती (गुण) के विना प्रकाशित नहीं होता ॥ २५८ ॥

कहा भयो जो धन भयो, गुन ते आदर होइ ।
कोटि दोब धारी धनुवो, गुन बिन गहत न कोइ ॥२५९॥

क्या हुवा यदि धन चला गया, गुण से ही इज्जत होती है । दो कोटियों (सिरों) को धारण करने वाले धनुष को बिना डोरी (गुन) से कोई नहीं लेता ॥ २५९ ॥

जात गुनी जातन तहां, आडम्बर युत सोय ।
पहुंचे चंग अकाश लौं, जो गुन संयुत होय ॥ २६० ॥

जहां गुणी मनुष्य पहुंच जाता है वहां आडम्बर (दिखावे) वाला आदमी नहीं पहुँच सकता । पतंग यदि गुण (डोरी) से युक्त हो तो आकाश तक पहुँच जाता है ॥ २६० ॥

गुनवारौ संपति लहै, लहै न बिन गुन कोय ।

काढे नीर पताल ते, जो गुनयुत घट होय ॥ २६१ ॥

गुणों वाला दौलत को प्राप्त करता है, कोई भी बिना गुणों के संपत्ति को प्राप्त नहीं करता। जो घड़ा डोरी वाला होता है वह पाताल से भी पानी को निकाल लेता है। (पिछले चार दोहों का यही तात्पर्य है कि गुणी पुरुष सर्वत्र पूजित होता है) ॥ २६१ ॥

को करि सकै बडेन को, कबहूं प्रति उपकार।
गिर सुर नर राख्यो न दधि, मुनि अँचयौ तिहिं वार २६२

कौन बड़े आदमियों के उपकार का बदला चुका सकता है ? पहाड़, देवता और मनुष्यों ने समुद्र से रक्षा न की, परन्तु (अगस्त्य) मुनि ने तीन बार में ही उसका आचमन कर लिया ॥२६२॥

विद्या गुरु की भक्ति सें, कै कीन्हे अभ्यास।
भील द्रोण के विन कहे, सीख्यो बाणविलास ॥ २६३ ॥

गुरु में भक्ति रखने से या अभ्यास करने से विद्या प्राप्त होती है। भील (एकलव्य) ने द्रोण के बिना सिखाये ही बाणों का चलाना सीख लिया। (मट्टी से द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर उसमें भक्ति धारण करके एकलव्य ने बाण विद्या सीखी) ॥ २६३ ॥

गुरु हू सिख वै ज्ञान गुन, शिष्य सुबुद्धि जु होय।
लिखै न खरधरि भींत पर, चित्र चितेरो कोय ॥ २६४ ॥

शिष्य यदि अच्छी बुद्धि वाला हो तो गुरु ज्ञान और गुणों की शिक्षा दे सकता है। कोई भी चित्रकार खुर्दरी दीवार पर चित्र नहीं बना सकता २६४

पंडित पंडित सों मिलै, संशै मिटत न बेर।
मिलै दीप दुहुँ दुहुँन को, होत अँधेर निबेर ॥ २६५ ॥

विद्वान यदि विद्वान से मिले तो उनका संशय मिटते देर नहीं लगती। दो दीवे यदि मिल जांय तो दोनों का (नीचे का) अंधेरा मिट जाता है२६५

उदिम बुद्धि बल सों मिलै, तब पावत सुख साज।
अंध कंध चढि पङ्गु ज्यौं, सबै सुधारत काज ॥ २६६ ॥

बुद्धि और बल से यदि उद्यम मिले तो (मनुष्य) सुख के सामान को पाता से। जैसे अंधे के कंधे पर चढ़कर लंगड़ा सब काम सुधार लेता है २६६

जाको हृदय कठोर तिहिं, लगै न कोमल बैन।
मैन बान ज्यौं पथर महँ, क्यौं हूं किये भिदैन ॥ २६७ ॥

जिसका दिल सख्त होता है उसे कोमल बचन कोई असर नहीं करते। जैसे कामदेव के किसी तरह भी चलाये हुवे बाण पत्थर में छेद नहीं करते ? ॥२६७॥

सबको रस में राखिये, अंत लीजिये नाहिं।
विष निकस्यो अति मथन तैं, रतनाकर हू माँहि ॥ २६८ ॥

सबको आनन्द से रखिये, बहुत हद्द नहीं कर देनी चाहिये। समुद्र में से ही बहुत बिलोड़ने पर जहर निकल आया ॥ २६८ ॥

फल विचारि कारज करौ, करहु न व्यर्थ अमेल।
तिल ज्यौं बारू पेलिये, नाहिन निकसै तेल ॥ २६९ ॥

फल विचार कर काम करो, बेफायदा असंगत बात न करो। तिलों की तरह रेत को निचोड़ो तो तेल नहीं निकलता ॥ २६९ ॥

पाछे कारज कीजिये, पहिले पहुंच विचार।
कैसे पावत उच्च फल, बावन बांह पसार ॥ २७० ॥

पहले अपनी पहुँच का विचार करलो पीछे काम करो। ठिगना आदमी बाजू फैला कर कैसे ऊंचे फल को प्राप्त कर सकता है ॥ २७० ॥

दुष्ट निकट बसिये नहीं, बस न कीजिये बात।
कदली बेर प्रसङ्ग ते, छिदै कंटकन पात ॥ २७१ ॥

दुष्ट आदमी के पास न बसो, यदि बसो तो बात न करो। बेर के साथ से केले के पत्ते कांटों से छिद जाते हैं ॥ २७१ ॥

तिनके कारज होत हैं, जिनके बडे सहाय।
कृष्ण पक्ष पाण्डव जई, कौरव गये विलाय ॥ २७२ ॥

उन्हीं के काम होते हैं जिनके बड़े आदमी मददगार होते हैं। कृष्ण की

तरफ होने से पांडव विजयी हुवे और कौरव नष्ट होगये ॥ २७२ ॥

पुण्य विवेक प्रभाव तैं, निहचल दक्ष निवास।
जौलौं तेल प्रदीप में, तौलौं जोति प्रकास ॥ २७३ ॥

अच्छे कर्मों और सोच बिचार के प्रभाव से चतुर मनुष्य का वास निश्चित होता है। जब तक दीये में तेल है तब तक उसकी ज्योति का प्रकाश रहता है ॥ २७३ ॥

नर कारज की सिद्धि लौं, करे अनेक प्रकार।
छूटै रोग शरीर तैं, को ढूंढे उपचार ॥ २७४ ॥

मनुष्य काम की सिद्धि तक तरह २ के उपाय निकालता है। शरीर से बीमारी छूट जाने पर फिर कौन उसका इलाज ढूंढता है ? ॥ २७४ ॥

अरि छोटो गनिये नहीं, जाते होत बिगार।
तृन समूह को छिनक में, जारत तनक अँगार ॥ २७४ ॥

जिससे नुकसान हो ऐसे शत्रु को छोटा न मानो। तिनकों के अम्बार को एक लहमे में छोटा सा अंगारा जला डालता है ॥ २७५ ॥

छोटे अरि पर चढत है, सजै सुभट तनत्रान।
लीजै ससा अखेट पर, नाहर कौ सामान ॥ २७६ ॥

अच्छा सिपाही छोटे शत्रु पर भी कवच से सजकर चढ़ाई करता हैं। खरगोश के शिकार के लिये शेर के शिकार का सामान लेना पड़ता है॥२७६॥

गुन ते संग्रह सब करें, कुल न विचारै कोय।
हरि हू मृगमद को तिलक, करत लेत जग सोय ॥२७७॥

सब लोग गुणके कारण आदर करते हैं, खानदान का कोई विचार नहीं करता। विष्णु, कस्तूरी (मृगमद) से तिलक करते हैं और संसार भी उसी को लेता है ॥ २७७ ॥

बुरौ होय तउ सुकुल कौ, तासों बुरी न होय।
यदपि धुवां है अगर को, करत सुगन्धित सोय ॥ २७८ ॥

अच्छे खानदान का यदि बुरा भी हो तो भी उस से हानि नहीं होती।

यद्यपि धूप से धुआं ही पैदा होता है परन्तु फिर भी वह सब को सुगन्धित ही करता है ॥ २७८ ॥

ताको अरि कहँ करि सकै, जाके जतन उपाय।
जरै न तातौ रेत में, जाके पनही पाय ॥ २७९ ॥

उसका दुश्मन क्या कर सकता है जिसके पास यत्न और तजवीज है। जिसके पांव में जूता है उसके पैर गर्म रेत में नहीं जलते ॥ २७९ ॥

पण्डित जन को श्रम मरम, जानत जे मति धीर।
कबहूं बांझ न जानई, तन प्रसूत की पीर ॥ २८० ॥

जो बुद्धि में धैर्यवान् हैं वे विद्वान् मनुष्यों के परिश्रम की असलीयत को जानते हैं। बन्ध्या, प्रसूता होने के दर्द को कभी भी नहीं जान सकती ॥२८०॥

सूरवीर की संपदा कायर पै नहिं जाय।
निहचै जानो सिंह भख, स्यार न कबहूँ खाय ॥ १८१ ॥

ताकत वाले आदमी की दौलत डरपोक के पास नहीं जाती। निश्चय जानो कि शेर के भोजन को गीदड़ कभी नहीं खाता ॥ २८१ ॥

भूपति के संग सुभट गण, आपस में यह रीत।
बन अभीत ज्यों सिंह तैं, बन तै सिंह अभीत ॥ २८२ ॥

राजा के साथ सिपाहियों का समूह आपस में इस तरीके से रहता है जैसे शेर के रहने से जंगल निर्भय रहता है और जंगल में शेर निर्भय हो कर रहता है ॥ २८२ ॥

जाय दरिद कविजन न को, सेवै राज समाज।
सिंह नृपति तब होत है, हाथ चढै गजराज ॥ २८३ ॥

कवियों की गरीबी तभी जाती है जब राजाओं की मंडली की सेवा करे। शेर तभी राजा कहलाता है जब हाथी की सूंड पर चढ़े ॥ २८३ ॥

वीर पराक्रम ना करे, तासों डरत न कोइ ॥ २८४ ॥
बालक हू के चित्त को, बाघ खिलौना होइ ॥ २८४ ॥

बलवान् यदि हमला न करे तो उससे कोई नहीं डरता । बच्च के दिले के लिये बाघ भी खिलौना होता है ॥ २८४ ॥

वीर पराक्रम ते करै, भुवमण्डल को राज ।
जोरावर यातैं करत, बन अपनो मृगराज ॥ २८५ ॥

बलवान् अपने जोर से सारी पृथ्वी का राज्य करता है । शेर क्योंकि जोरावर है इसी लिये बन को अपना बना लेता है ॥ २८५ ॥

जोरावर अरि मारिये, बुध वश किये उपाय ।
काल यमन को कृष्ण ज्यौं, पट मुचुकुन्द उढाय ॥२८६॥

बुद्धिमान पुरुष उपायों से वश में कर के बलवान् दुश्मन को भी मार डालता है । जैसे कृष्ण ने मुचुकुन्द पर कपड़ा ओढ़ाकर उसके द्वारा कालयमन को मार डाला था ॥ २८६ ॥

राजा के बल लोक सब, फिरैं धरैं चहुँ ओर ।
ज्यों बन में छूटे चरैं, बांधे हय के जोर ॥ २८७ ॥

राजा के बल के कारण सब आदमी चारों ओर (निडर होकर) फिरते, बैठते हैं । जैसे जंगल में बांधे हुवे घोड़े के जोर से (गौ भैंस वगैरह) छूटे हुवे चरते हैं ॥ २८७ ॥

नृप प्रताप तैं देश में, रहे दुष्ट नहिं कोय ।
प्रगटत तेज दिनेश कौं, वहां तिमिर नहिं होय ॥ २८८ ॥

राजा के प्रताप से देश में कोई दुष्ट नहीं रहता । जहां सूर्य का तेज जाहिर होता है वहां पर अन्धेरा नहीं होता ॥ २८८ ॥

यहै बात सब ही कही, राजा करै सु न्याय ।
ज्यौं चौपर के खेल में, पासो परे सुदांय ॥ २८९ ॥

यह बात सबने कही है कि राजा जो कुछ करे वहीं इन्साफ है । जैसे चौसर की खेल में जो पासा पड़े वही अच्छा दांव है ॥ २८९ ॥

कारज ताही को सरे, करेजु समै निहारि ।
कबहुं न हारे खेल में, जो ले दांव विचारि ॥ २९० ॥

काम उसी का अच्छा होता है जो समय देखकर करे। कभी भी वह खेल में नहीं हारता जो दाओ विचार कर खेलता ॥ २९० ॥

सब देखै पै आपनो, दोष न देखै कोइ।
करै उजेरो दीप पै, तरे अंधेरो होइ ॥ २९१ ॥

पराये के दोषों को सब देखते हैं परन्तु अपने दोष को कोई नहीं देखता। दीया उजियाला तो करता है परन्तु नीचे उस के अन्धेरा ही होता है ॥२९१॥

संत कष्ट सह अति सुखी, राखे राख समीप।
आप जरे तउ ओर का, करे उजेरो दीप ॥ २९२ ॥

सन्त आदमी कष्ट सह कर भी दूसरे आदमी को अपने पास रखकर बड़ा सुखी रखते हैं। दीया आप जलता है फिर भी औरों को प्रकाश करता है२९२

मारे इक रक्षा करे, एकहि कुल को होय।
ज्यौं कृपान अरु कवच ये, एक लोह सों दोय ॥ २९३ ॥

एक ही वंश में से होकर एक मारता है दूसरा रक्षा करता है। जैसे तलवार और कवच दोनों एक ही लोहे से होते हैं। उन में से एक काटने वाला और दूसरा रक्षा करने वाला होता है ॥ २९३ ॥

अपनी अपनी ठोर पर, सब को लागे दांव।
जल में गाडी नाव पर, थल गाडी पर नाव ॥ २९४ ॥

अपनी २ जगह पर सबका दांव लगता है। जल में गाड़ी नाव पर होती है और सूखी जगह पर गाड़ी पर नाव होती है ॥ २९४ ॥

सुनि मन सुथिर कुबात तैं, कैसे राखे कोइ।
जल प्रतिबिंबित बात वश, थिरहूं चंचल होइ ॥ २९५ ॥

बुरी बात को सुनकर कोई कैसे अपने मन को कायम रख सकता है। जल में स्थिर हुई २ परछाई भी वायु के वश से चंचल हो जाती है ॥२९५॥

जो हाजिर अवसान पर, सोई शस्त्र प्रमान।
डाभ हि ते बलदेव ज्यौं, हरे सूत के प्रान ॥ २९६ ॥

समय पर जो हथियार हाजिर होजाय वही अच्छा शस्त्र है। जैसे बलराम

ने कुशा (डाभ) से ही सूत ऋषि के प्राण हर लिये थे ॥ २९६ ॥

बडे अनीति करैं तऊ, बुरो कहै नहिं कोय ।
बालि हत्यो अपराध विन, ताहि भजे सब कोय ॥२९७॥

बड़े आदमी यदि अन्याय भी करें तो भी कोई बुरा नहीं कहता । बिना जुर्म के ही बालि को मार डाला, फिर भी उसे (राम को) सब कोई पूजता है ॥ २९७ ॥

नीति निपुण राजानि को, अजगुत नाहिं सुहाय ।
करत तपस्या शूद्र को, ज्यौं मारयो रघुराय ॥ २९८ ॥

नीति में जो होशियार राजा होते हैं उन्हें बेमेल की बात शोभा नहीं देती । जैसे तपस्या करते हुए शूद्र को रघुनाथ रामचन्द्र ने मार डाला २९८॥

लघु मिलिए गरुवे यदपि, बडे कछू लें नाहिं ।
गिरिवर आने कपिन के जो मकरालय माहिं ॥२९९ ॥

छोटे आदमियों से यदि बड़ी चीज भी मिलजाय तो भी बड़े आदमी उसे नहीं लेते । जैसे बानरों से लाये हुवे पहाड़ समुद्र ने नहीं लिये ॥२९९॥

भले बुरे छोटे बडे, रहे बडेनि पे आय ।
मकर असुर सुरगिर अनल, दधि माधि सकल बसाय२००

अच्छे, बुरे और छोटे, बड़े सब बड़ों के पास ही आकर रहते हैं । मगर, राक्षस, देवता, पहाड़ और आग सब समुद्र में बसते हैं ॥ २०० ॥

बडे भार ले निरव हैं तजत न खेद विचारि ।
शेष धरी धरि धर धरैं अब लों देत न डारि ॥ ३०१ ॥

बड़े आदमी भार को लेकर निश्चिन्त होजाते हैं, कष्ट समझ कर उसे छोड़ नहीं देते । शेषनाग पृथ्वी को धारण करके उसे धरे ही रहते हैं और अब तक डाल नहीं देते ॥ ३०१ ॥

बुरी करे पर जे बडे, भली करैं हित धारि ।
जैसे दधि बाध्यौं तऊ, कपि दल दियो उतारि ॥ ३०२ ॥

बुराई करो परन्तु जो बड़े हैं वे हित को धारण कर के भलाई ही करते

हैं। जैसे यद्यपि समुद्र बांधा गया तो भी बानरों के समूह को समुद्र ने पार उतार दिया ॥ ३०२ ॥

उत्तम जन सों मिलत ही, अवगुण सो गुण होय।
घन सँग खारो उदधि मिल, बरसे मीठो तोय ॥ ३०३ ॥

उत्तम आदमी से मिलने पर दोष भी गुण होजाता है। खारा समुद्र बादल के साथ मिलकर मीठा पानी होकर बरसता है ॥ ३२३ ॥

काहू सों नाहीं मिटे, अपरापत के अंक।
बसत ईश के शशि तउ, भयो न पूर्ण मयंक ॥ ३०४ ॥

जो चीज नहीं मिलनी होती (अपरापत) उसके चिह्न किसी से नहीं मिटते। शिव के सिर पर बसता है फिर भी चन्द्रमा कभी पूर्ण नहीं हुआ ३०४

कोऊ दूर न कर सके, विधि के उलटे अंक।
उदधि पिता तउ चंद को, धोय न सक्यो कलंक ॥३०५॥

विधाता के लिखे उलटे अंकों (दुर्भाग्य) को कोई दूर नहीं कर सकता। यद्यपि समुद्र पिता है (क्योंकि चन्द्रमा का जन्म समुद्र से हुआ है) फिर भी (वह) चन्द्रमा के कलंक को नहीं धोसका ॥ ३०५ ॥

गहिये ओट बडेन की, जहां मिटे दुख शंक।
उदधि शरण मेनाक को, मेट न सक्यो कलंक ॥ ३०६ ॥

बड़ों की शरण लीजिये जहां पर दुःख और फिक्र मिट जांय। मैनाक पर्वत ने समुद्र की शरण ली परन्तु उसके कलंक को न मिटा सका ॥३०६॥

छल बल धर्म अधर्म करि, अरि साधिये अभीति।
भारत में अर्जुन किसन, कहा करी युध रीति ॥ ३०७ ॥

धोखे से, बल से, धर्म से, अधर्म से (जिस तरह भी होसके) शत्रु को निडर होकर जीतना चाहिये। महाभारत के युद्ध में अर्जुन और कृष्ण ने कैसी युद्ध की रीति की (अर्थात् हर तरह से उन्होंने शत्रु को परास्त किया) ॥ ३०७ ॥

गाहक सबे सपूत के, सारे काज सपूत।

सबको ढंपन होत है, जैसे वनको सूत ॥ ३०८ ॥

अच्छे पुत्र को सब चाहने वाले होते हैं, अच्छा पुत्र ही सब कामों को संवारता है। जैसे जंगल का सूत सब के लिये ढांपने वाला होता है ॥३०८॥

आप कष्ट सह और को, शोभा करत सपूत।
चरखी पीनन चरण खिच, जग ढंकन ज्यौं सूत ॥ ३०९ ॥

अच्छा लड़का स्वयं दुःख उठाकर औरों को आनन्द देता है। जैसे संसार को ढांपने वाला सूत चरखे से पिना जाता है और पैरों से खींचा जाता है३०९

करत करत अभ्यास के, जड मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, शिल पर परत निशान ॥ ३१० ॥

अभ्यास के करने से जड़ बुद्धि वाला भी ज्ञानवान् होजाता है। रस्सी के आने जाने से पत्थर पर भी निशान पड़ जाता है ॥ ३१० ॥

सुख दिखाय दुःख दीजिये, खल सों लरिये काहि।
जो गुर दीने ही मरै, क्यों विष दीजै ताहि ॥ ३११ ॥

नीच मनुष्य से क्या लड़ना जिस को सुख दिखाकर दुःख दिया जा सकता है। जो गुड़ देने से ही मरजाय उसे जहर क्यों दिया जाय॥ ३११ ॥

बूझे ही तैं जानिये, बुध मूरख मन माहिं।
छलकै ओछे नीर घट, पूरे छलकत नाहिं ॥ ३१२ ॥

विद्वान् और मूर्ख की पहचान बोलने से ही दिल में कर लो। आधे भरे घड़े में पानी उछलता है और पूरे भरे घड़े में नहीं छलकता ॥ ३१२ ॥

सहज सन्तोष है साध को, खल दुख देत प्रवीन।
मछवा मारतु जल बसत, कहा बिगारत मीन ॥ ३१३ ॥

साधु पुरुष को स्वभाव से ही सन्तोष होता है और दुष्ट आदमी दुःख देने में ही चतुर होता है। जल में रहने वाली मछली बेचारी क्या बिगाड़ती है परन्तु मछियारा उसे मारता ही है ॥ ३१३ ॥

सुन्दर स्थान न छोडिये, जो लौं होय न और।
पिछलो पांव उठाइये देखि धरनि को ठौर ॥ ३१४ ॥

जब तक और कोई स्थान न हो तब तक अच्छी जगह को (जो अपने पास है) न छोड़ो। जमीन पर आगे स्थान देखकर ही पिछले पांव को उठाना चाहिये ॥ ३१४ ॥

फिर पीछे पछताइये, सोन करै मति सूध।
बदन जीभ हिय जरतु है, पीवत तातो दूध ॥ ३१५ ॥

जिसकी बुद्धि साफ है वह उस काम को नहीं करता जिससे पीछे पछताना पड़े। गर्म दूध पीने से मुख, जीभ और जिगर जलजाते हैं। (सोचकर ही सब काम करने चाहियें) ॥ ३१५ ॥

को सुख को दुख देत है, देत करम झकझोर।
उरझे सुरझे आपही, ध्वजा पवन के जोर ॥ ३१६ ॥

कौन सुख और दुःख देता है, कर्मों का फेर ही सब को सुख दुःख देता है। झंडा वायु, के जोर से ही स्वयं उलझता भी है और सुलझ भी जाता है ३१६

सब सुख है सन्तोष में, धरिये मन सन्तोष।
नेक न दुरबल होत है, सर्प पवन के पोष ॥ ३१७ ॥

सन्तोष में ही सब सुख हैं इस लिये मन में सन्तोष धारण करो। सांप केवल हवा से पुष्ट होकर भी जरा भी कमजोर नहीं होता ॥ ३१७ ॥

पांय परेहु पिशुन सों, नेकु न करिये बात।
नमत कूप को डोल ज्यों, जीवन हर ले जात ॥ ३१८ ॥

पांव पड़ने पर भी दुष्ट से जरा भी बात न करो। जैसे कुंएं का डोल झुककर भी कुंएं का जीवन अर्थात् पानी हर लेजाता है (जीवन के दूसरे अर्थ पानी भी हैं) ॥ ३१८ ॥

सबल न पुष्ट शरीर को, सबल तेज युत होय।
लष्ट पुष्ट गज दुष्ट ज्यों, अंकुश के वश होय ॥ ३१९ ॥

वह बलवान् नहीं जो शरीर में पुष्ट हो, बलवान् वह है जो तेज से युक्त है। जैसे हृष्ट पुष्ट, दुष्ट हाथी भी अंकुश के वश में होजाता है ॥ ३१९ ॥

कायर नर को देख नर, मुख फीको दरशाय।

रंग पतंग ज्यों धूप में, झटक चटक घट जाय ॥ ३२० ॥

डरपोक आदमी तेजस्वी आदमी को देखकर अपना मुह फीका दिखलाता है। जैसे पतंग का रंग धूप में झटपट घट जाता है ॥ ३२० ॥

दोष धरे गुनि को पिशुन, इह डर गुण न बिसारि ।
जूं के भय ते वसन को, देत कहा कोउ डारि ॥ ३२१ ॥

'दुष्ट आदमी गुणी मनुष्य पर दोष देते हैं' इस डर से गुणी अपने गुण को भूल नहीं जाते। क्या कोई जुओं के डर से कपड़े को उतार डालताहै ३२१

भली करत लागति बिलम, बिलम न बुरे विचार ।
भवन बनावत दिन लगै, ढाहत लगति न बार ॥ ३२२ ॥

अच्छा काम करते हुवे देर लगतीं हं, बुरे विचारों में देर नहीं लगती। घर को बनाते हुवे तो देर लगती है लेकिन गिराते हुए थोड़ी सी भी देर नहीं लगती ॥ ३२२ ॥

सोई अपनो आपनो, रहे निरन्तर साथ ।
होत परायो आपनो, शस्त्र पराये हाथ ॥ ३२३ ॥

वही अपना है जो लगातार साथ रहे। अपना हथियार दूसरे के हाथ में गया हुवा पराया होजाता है ॥ २२३ ॥

बिनशत वार न लागई, ओछे जन की प्रीति ।
अंबर डंबर सांझ के, ज्यों बारू की भीति ॥ ३२४ ॥

नीच मनुष्य की मुहब्बत नष्ट होते देर नहीं लगती। जैसे आकाश तक सजी हुई रेतकी दीवार (के गिरते देर नहीं लगती। ॥ ३२४ ॥

करिये बात न तन परस, खल ढिंग जैये नाहिं ।
कटुक नींब तर जात ही, मुख करुवो है जाहि ॥ ३२५ ॥

दुष्ट मनुष्य से न तो बात करो, न शरीर छूओ और न उस के समीप जावो। कोंड़े नीम के वृक्ष के नीचे जाते ही मुंह कड़वा होजाता है ॥ ३२५ ॥

निपट अमिलती बात क्यों, कैसे करिहै कोइ ।
वसन नील के भांड में, कबहूं लाल न होइ ॥ ३२६ ॥

बिल्कुल बेमेल की बात को कौन कैसे कर सकता है? नील के बर्तन में जैसे कपड़ा लाल कभी नहीं होता ॥ ३२६ ॥

देखि ठिकानौ मांगिये, मांगे मिलै जु होइ।
मुनि घर भीतर कांगही, ढूंढे लहत न कोइ ॥ ३२७ ॥

स्थान देखकर, और यदि मांगने से मिलजाय, तो मांगना चाहिये। मुनि के घर में ढूंढने पर भी कोई कांग (एक गहना) को नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ३२७ ॥

कहे मूढ की बात के करिये जो चित होय।
सौंह दिवाये और के, परे अग्नि में कोय ॥ ३२८ ॥

मूर्ख के बात करने पर भी वही करिये जो अपने दिल में होवे। दूसरे को कसम दिलाने पर भी कोई आग में कूद पड़ता है? ॥ ३२८ ॥

झूठहु ऐसो बोलिये, सांच बरोबर होय।
ज्यों अंगुरी सों भीत पर, चांद बतावै कोय ॥ ३२९ ॥

झूठभी ऐसा बोलना चाहिये जो सच के बराबर हो। जैसे कोई अंगुली से दीवार पर चन्द्रमा को बतावे ॥ ३२९ ॥

समझें अनसमझै कछुक, कहिये मीठी बात।
बालक के सुन २ बचन, जैसे श्रवन सुहात ॥ ३३० ॥

जो कुछ समझदार हों और कुछ नासमझ हों, वे भी मीठी बात कहा करते हैं। जैसे बच्चे की बात सुन २ करके कानों को अच्छी लगती है ॥ ३३० ॥

सुबुध बीच परि दुहुंन को हरत कलह रस पूर।
करत देहरी दीप ज्यों, घर आंगन तम दूर ॥ ३३१ ॥

बुद्धिमान आदमी दो आदमियों के बीच में पडकर प्रेम प्रवाह से दोनों की लड़ाई को मिटा देते हैं। जैसे दीवे को देहली (दहलीज=दरवाजे के नीचे वाली लकड़ी) पर रखो, तो वह घर और आंगन दोनों का अन्धेरा दूर करता है ॥ ३३१ ॥

अधिक दुखी लखि आपतें, दीजे दुख बिसराय।

धर्म सुवन वन दुख हर्‌यो, मुनि नल विपत बताय ३३२

अपने से अधिक दुःखी को देखकर अपना दुःख भूल जाओ। मुनि व्यास ने जैसे जंगल में धर्मपुत्र युधिष्ठिर का दुःख राजा नल की मुसीबत बताकर मिटा दिया ॥ ३३२ ॥

होत बुरे हूं ते भलो, काहू समै प्रकास।
अधिक मास ते ज्यों मिट्यो, पाण्डव फिर बनवास ३३३

किसी २ समय बुरे से भी भलाई जाहिर होजाती है। जैसे अधिक मास से पांडवो का फिर बनवास हट गया ॥ ३३३ ॥

एक अनीति करै लहै, संगी दुख सुख नाहिं।
भीम कीचकन को दिये, मार चिता के माहिं ॥ ३३४ ॥

यदि एक मनुष्य अन्याय करे तो उसके साथी भी दुःख पाते हैं, सुख नहीं। भीम ने (कीचक के अपराध के कारण) कीचक के और आदमियों को भी चिता में मार डाला ॥ ३३४ ॥

बडे विपत में हू करें, भले बिराने काम।
किय विराट तनु की विजय अर्जुन करि संग्राम ॥ ३३५ ॥

बड़े मनुष्य विपत्ति में भी दूसरों के भले काम करते हैं। जैसे अर्जुन ने (बनवास में रहते हुवे भी) युद्ध कर के विराट् के पुत्र को विजय प्राप्त करवाई ॥ ३३५ ॥

बडे बडे हू काम करि, आप सिहावत नाहिं।
जय यश उत्तर को दियो, पथ विराट के माहिं ॥ ३३६ ॥

बड़े मनुष्य बड़े काम करके भी स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते। (अर्जुन ने) विराट् के युद्ध में विजय का यश (विराट्के पुत्र) उत्तर को ही दिया३३६

बडे बचन पलटे नहीं, कहि निरवाहैं धीर।
कियो विभीषन लंकपति, पाय विजय रघुवीर ॥ ३३७ ॥

बड़े आदमी अपने वचन को नहीं टालते, एक बार कहकर धीर लोग उस बचन को अन्त तक निभाते हैं। रामचन्द्र ने विजय हासिल करके भी

विभीषण को ही लंका का राजा बनाया ॥ ३३७ ॥

बुरी करैं तेई बुरे, नाहिं बुरो कोउ और।
बनिज करै सो बानियो, चोरी करै सो चोर॥ ३३८॥

जो बुराई करते हैं वही बुरे हैं, और कोई बुरा नहीं । जो व्यापार करेगा वह बनिया और जो चोरी करेगा वह चोर कहलायेगा ॥ ३३८ ॥

झूठ बसे जा पुरुष में, ताही की अप्रतीति।
चोर जुआरी सों भले, यातें करत न प्रीति॥ ३३९॥

जो पुरुष झूठ बोलने वाला है उसी का अविश्वास होता है। इसी लिये भले आदमी चोर और जूएबाज से प्रेम नहीं करते ॥ ३३९ ॥

कुल सपूत जान्यो परै, लखि शुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात॥ ३४०॥

अच्छे खान्दान का लड़का, उस के अच्छे चिह्न और शरीर देखकर ही जान लिया जाता है। होनहार पौदे के चिकने २ ही पत्ते होते हैं ॥३४०॥

नियमित जननी उदर में, कुल को खेत सुभाव।
उछलत सिंहनि को गरभ, होत कुपति घनराव॥ ३४१॥

माता के पेट में ही वंश परम्परा का स्वभाव नियमित होजाता है। जैसे शेरनी के गर्भ में बच्चा बादल का शब्द सुनकर गुस्से होकर उछलता है ॥ ३४१ ॥

बिना सिखाये लेत है, जिहिं कुल जैसी रीति।
जनमत सिंहन को तनय, गज पर चढत अभीति॥३४२॥

जिस कुल की जैसी रीति होती है वह बिना सिखाये ही (उस कुल का बच्चा) सीख लेता है। पैदा होते ही शेर का बच्चा हाथी पर निडर होकर चढ़ जाता है ॥ ३४२ ॥

सत्य बचन मुख जो कहत, ताकी चाह सराह।
गाहक आवत दूर ते, सुनि इक शब्दी नाह॥ ३४३॥

मुख से जो सच्चे बचन कहता है उसी की चाह और प्रशंसा होती है।

एक बात करने वाले दुकान के मालिक का नाम सुनकर गाहक दूर से ही उसके पास चले आते हैं ॥ ३४३ ॥

प्रेम पंक्ति जासों भई, सुख दुख ताके संग।
वसत कमल अलिवास वस, कलमख भखत पतंग॥३४३॥

जिसके साथ प्रेम होगया उसी के साथ अपने दुःख और सुख भी होजाते हैं। भौंरा खुशबू के वश में होकर कमल के अन्दर वास करता है और पतंगा दीओं में लगे काजल को ही खाता है ॥ ६४४ ॥

चहल पहल अवसर परब, लोक रहत घर घेर।
ते फिर दृष्ट न आवहीं, जैसे फसल बटेर ॥ ३४५ ॥

खुशी और त्योहार के समय जब घर में रौनक रहती है लोग घर को घेरे रहते हैं। वे लोग फिर नजर नहीं आते जैसे फसली बटेर (फसल के बाद नज़र नहीं आते) ॥ ३४५ ॥

बुद्धि बिना विद्या कहो, कहा सिखावे कोइ।
प्रथम गांव ही नांहि तौ, सींव कहां ते होइ ॥ २४६ ॥

बुद्धि के न रहते हुवे, कहो, कौन कैसे विद्या सिखा सकता है। जब पहले गांव ही नहीं तो सीमा (हद) कहां से बन सकती है ॥ ३४६ ॥

बहुत न बकिये कीजिये, कारज अवसर पाय।
मौन गहे वक दांव पर, मछरी लेत उठाय ॥ ३४७ ॥

बहुत बोलना नहीं चाहिये, मौका पाकर काम कर लेना चाहिये। बगला शिकार पर चुपचाप रहता है और मछली को उठा लेता है ॥ ३४७ ॥

भजन निरन्तर संत जन, हरि पद चित्त लगाय।
जैसे नट दृढ दृष्टि करि, धरत बरत पर पांय ॥ ३४८ ॥

सन्तलोग लगातार भजन करते हुवे परमात्मा में इस तरह चित्त लगाते हैं जैसे बाजीगर अपनी नजर को एकटक लगाकर रस्सीपर पांव धरता है ३४८

कह रस में कह रोष में, अरि ते जिन पतियाय।
जैसे शीतल तप्त जल, डारत आग बुझाय ॥ ३४९ ॥

न तो प्रेम के समय और न क्रोध के समय शत्रु का विश्वास करना चाहिये। जैसे पानी चाहे गरम हो, चाहे ठण्डा आग को बुझा ही डालता है ॥ ३४९ ॥

चप चप करती ना रहै, नर लवार की जीह।
चल-दल जैसे चपल दल, चलत रहै निस दीह ॥ ३५० ॥

बकवासी आदमी की जीभ क्या हर समय चप २ नहीं करती रहती ? (अर्थात् उसकी जीभ हर समय हिलती रहती है) जैसे पीपल का पत्ता रात दिन हिलता रहता है ॥ ३५० ॥

जैसो प्रभु तैसो अनुग, होय सुबात प्रमान।
वामन करकी लष्टिका, बढे चढी असमान ॥ ३५१ ॥

जैसा मालिक होगा वैसा ही नौकर, यह बात सिद्ध है। जैसे वामन के हाथ की लाठी आकाश में उतना ही चढ़ेगी (जितना उसका कद) ॥३५१॥

बढ़ै न ऐसो कोन है, दान मान को पाय।
पांय धरा वामन भए, शीश स्वर्ग धर पांय ॥ ३५२ ॥

ऐसा कौन है जो दान और सम्मान को पाकर न बढ़े (घमंड न करे) पृथ्वी को पाकर वामन ने भी (वामन = बोना-छोटा आदमी और एक विष्णु का अवतार) सिर पर स्वर्ग में पैर धर दिया ॥ ३५२ ॥

अपनी कीरति कान सुनि, होत न कौन खुस्याल।
नाग मंत्र के सुनत ही, विष छांडत है व्याल ॥ ३५३ ॥

अपने यश को अपने कानों से सुनकर कौन पुलकित नहीं होता। सांप नागमंत्र के सुनते ही अपने जहर को छोड़ देता है ॥ २५३ ॥

विद्या याद किये बिना, बिसरत इहिं उनमान।
बिगर जात बिन खबर के, ढोली कैसो पान ॥ ३५४ ॥

विद्या बिना याद किये इस तरह भूल जाती है जैसे ढोली के पान बिना खबर के बिगड़ जाते हैं (यदि ध्यान न दो तो ढोली के पानों की तरह खराब होजाती है) ॥ ३५४ ॥

सबै धकावे निबल को, सबल पुरातन पाठ।
डारै जारि बहाय दे, अनिल अनल जल काठ ॥ ३५५ ॥

सदा से यह बात चली आई है कि बलवान् कमजोर को धिक्कारता है (दबाता है) जैसे हवा, आग और पानी, लकड़ी को उड़ा, जला और बहा देते हैं ॥ ३५५ ॥

अँतर अँगुरी चार कौ, सांच झूठ में होय।
सब माने देखी कही, सुनी न मानै कोय ॥ ३५६ ॥

सच और झूठ में चार ही अंगुल का फर्क होता है। देखकर कही बात को सब कोई मानते हैं और सुनकर कही हुई को कोई नहीं मानता ॥३२६॥

निबहै सोई कीजिये, पन अपने उनमान।
कैसे होत गरीब पै, राजा कैसो दान ॥ ३५७ ॥

अपने ख़याल के अनुसार वही प्रतिज्ञा करो जो निभ सके। गरीब आदमी से राजा का सा दान कैसे होसकता है ॥ ३५७ ॥

जोर न पहुँचे निबल को, जो पै सबल सहाय।
भोडर की फानूस को, दीप न बात बुझाय ॥ ३५८ ॥

ऐसे कमजोर पर जिसका सहायक बलवान हो जोर नहीं चलता। भोडर (अबरक) के लैम्प को हवा नहीं बुझा सकती ॥ ३५८ ॥

कारण बिन कारज नहीं, निहचै मान बचन्न।
करै रसोई जो मिले, आग इँधन जल अन्न ॥ ३५९ ॥

यह बात तिश्चित जानो कि बिना कारण के कोई काम नहीं होता। भोजन तभी कोई कर सकता है जब आग, लकड़ी, पानी और अन्न मिलें ॥ ३५९ ॥

परी विपत तैं छूटियै, करियै जोर उपाव।
क़ैसे निकसै जतन बिन, परी भौंर में नाव ॥ ३६० ॥

यदि बल और उपाय किया जाय तो आई हुई मुसीबत से आदमी छूट सकता है। मंझधार में पड़ी नाव बिना यत्न के कैसे निकल सकती है ॥३६०॥

दुख सुख दीवे को दई, है आतुर इहिं ठाट।
अहि करंड मूसा परयो, भकि निकरयो उहिबाट ॥३६१॥

इस संसार में दैव दुःख सुख देने के लिये बड़ा व्याकुल रहता है। सांप की पिटारी में चूहा आकर पड़ गया और सांप उसे खाकर उसी रास्ते से निकल गया (जिससे चूहा आया था; सांपने अपने और चूहे ने अपने भाग्य का भोग किया) ॥ ३६१ ॥

प्रेरक ही ते होत है, कारज सिद्ध निदान।
चढे धनुष हू ना चलै, बिना चलाये बान ॥ ३६२ ॥

प्रेरणा करने वाले से ही लाचार, काम सिद्ध होते हैं। चढ़े हुए धनुष से बिना चलाये बाण नहीं चलता ॥ ३६२ ॥

होय भले के सुत बुरो, भलो बुरे के होय।
दीपक के काजल प्रगट, कमल कीच ते जोय ॥ ३६३ ॥

भले आदमी का लड़का बुरा भी होता है और बुरे का भला भी होता है। दीवे से काजल पैदा होता है और कीचड़ से कमल जन्म लेता है॥३६३॥

हार बडे की जीत है, निबल न माने तास।
विमुख होय हरि ज्यों कियो, कालयमन को नास ॥३६४॥

बड़े आदमी की हार भी जीत है, उसे कमजोर नहीं मानना चाहिये। जैसे हरि ने पीठ दिखाकर भी कालयमन राक्षस का नाश किया॥ ३६४ ॥

होय भले चाकरन ते, भलो धनी को काम।
ज्यों अंगद हनुमान ते, सीता पाई राम ॥ ३६५ ॥

अच्छे नौकरों से मालिक का काम अच्छा होता है। जैसे अंगद और हनुमान द्वारा रामचन्द्र ने सीता को पाया ॥ ३६५ ॥

सबकी समय विनास में, उपजति मति विपरीति।
रघुपति मारयो लंकपति, जो हरिलै गयो सीति ॥३६६॥

विनाश के समय सबकी बुद्धि उलटी होजाती है। लंकापति रावण को, जो सीता को हर ले गया था, रामचन्द्र ने मारडाला (रावण का नाश अवश्य

होना था इसी लिये उसकी मति ही विपरीत होगई और सीता को चुरा लेगया जो उस के नाश का कारण बना) ॥ ३६६ ॥

जो धनवन्त सुदेय कछु, देय कहा धनहीन ।
कहा निचोरै नग्न जन, न्हान सरोवर कीन ॥ ३६७ ॥

जो धनवाले हैं वही कुछ देते हैं, जो धन से हीन हैं वे क्या दे सकते हैं। नंगा आदमी जिसने तालाब में स्नान किया है क्या निचोड़ेगा ॥३६७॥

सुख सज्जन के मिलन को, दुर्जन मिलै जनाय ।
जाने ऊख मिठास को, जब मुख नींब चबाय ॥ ३६८ ॥

अच्छे आदमी के मिलने का सुख बुरे आदमी के मिलने पर ही होता हैं। गन्ने के मिठास को आदमी तभी जानता है जब मुख से नीम को चबा चुका हो ॥ ३६८ ॥

होत चाह कब होत है, प्रेम सुसज्जन संग ।
पास दिये बिन वास पर, चढै न गहरो रंग ॥ ३६९ ॥

केवल चाह होने से ही अच्छे आदमी के साथ प्रेम कब होसकता है ? (जब तक उस के लिये यत्न न किया जावे) पास होने पर भी बिना दिये, वस्त्र पर गहरा रंग नहीं चढ़ता ॥ ३६९ ॥

जाहि मिले सुख होत है, ता बिछुरे दुख होय ।
सूर उदय फूलै कमल, ता बिन सकुचै सोय ॥ ३७० ॥

जिसके मिलने पर सुख होता है, उसके बिछड़ने पर दुःख मालूम होता है। सूर्य के उदय होने पर कमल खिल जाता है और उस के बिना सिकुड़ जाता है ॥ ३७० ॥

झूठे ही करिये जतन, कारज बिगरै नाहिं ।
कपट पुरुष ज्यों खेत पर, देखत मृग भज जाहिं ॥३७१॥

झूठमूठही यदि कोशिश कीजाय तो काम नहीं बिगड़ता। जैसे बनावटी पुरुष को खेत में देखकर हरिण दौड़ जाते हैं ॥ ३७१ ॥

प्रेम नेम के पंथ को, है अद्भुत कछु रूप ।

पिय बिन लागै लगत है, शरद जौन्ह ज्यों धूप ॥ ३७२ ॥

प्रेम के रास्ते का कुछ अजीब ही रूप है। प्यारे के बिना शरदृऋतु की चांदनी भी धूप की तरह लगती है ॥ ३७३ ॥

दुखदाई सोइ देत सुख सुखदाई संग जात।

घट जल भीजे चीर को, लागि लूय सियरात ॥ ३७२ ॥

दुःख देने वाला भी सुख देता है जब वह सुख देने वाले के साथ हो। घड़े के जल से भीगे हुवे कपड़े को लगी हुई लू भी शरीर को ठण्ढी लगती है ॥ ३७३ ॥

सम सहाय के बिन मिले, सुखदाई सुख देइ।

भीजे चीर बिन घट सलिल, लागत तपत करेइ ॥३७४॥

बराबर के सहायक के बिना मिले सुख देने वाला भी दुःख देता है। घड़े क जल से न भीगा हुवा कपड़ा शरीर से लगकर गर्मी करता है ॥३७४॥

कारज सोई सुधरि है, जो करि है समभाय।

अति वर्षै वरषे बिना, ज्यों करासिन कुम्हलाय ॥ ३७५ ॥

काम वही सुधरता है जो तोलकर किया जाय। बहुत बरसने से और बिल्कुल न बरसने से जैसे खेती मुरझा जाती है ॥ ३७५ ॥

सज्जनता न मिले किते, जतन करौ किन कोइ।

ज्यों करि फार निहारिये, लोचन बडो न होइ ॥ ३७६ ॥

सज्जनता (भलमनसाहत) कहीं पर नहीं मिलती चाहे कितना ही परिश्रम करो। जैसे आंखें, फाड़कर देखने से भी वे बड़ी नहीं होजातीं ॥३७६॥

बिन बनाव बानिक बने, ताही के कुबखान।

गदला पर ज्यों अगरजो, मींठे परत न स्वान ॥ ३७७ ॥

बिना बनाव (सोच विचार) के जो काम का बनाने वाला (करने वाला) बनजावे उसकी निन्दा होती है। गंद पर जो अगर को और मींठे पर जो कुत्ते को डालता है (उसकी जैसे निन्दा होती है) ॥ ३७७ ॥

तन बनाय उपजाय रुचि, ठानत मान निदान।

ज्यों पंचामृत पौषि के, छार करत जल पान ॥ ३७८ ॥

शरीर को सजाकर और दूसरे की रुचि (चाह) को पैदा करके जो मान करता है (अर्थात् रूठ जाता है) वह ऐसा है जैसे कोई पंचामृत पीकर खारे जल का पान करे ॥ ३७८ ॥

मन दे तन तन देन को, मन मिलयो तन लाज ।
ज्यों आंकुस को नटत को, दै गिर सौं गजराज ॥ ३७९ ॥

मनको देकर शरीर देने के लिये कौन तनता है ? अर्थात् मन मिलजाने पर शरीर के लिये क्या लज्जा करनी ? पर्वत के समान हाथी को देकर अंकुश के लिये कौन मना करता है ? ॥ ३७९ ॥

छोटेपन महं आइ है, कैसे मोटी बात ।
छेरी के मुंह में दियो, ज्यौं पेठा न समात ॥ ३८० ॥

छोटेपन में कैसे बड़ी बात आसकती है ? बकरी के मुंह में दिया हुवा पेठा जैसे नहीं समाता ॥ ३८० ॥

होत निवाह न आपनो, लीने फिरै समाज ।
चूहा बिल न समात है, पूंछ बांधिये छाज ॥ ३८१ ॥

अपना निर्वाह तो होता नहीं और लिये फिरते हैं समूह को, वह ठीक इस तरह है जैसे चूहा बिल में अपने आप तो समाता नहीं और पूंछ में छाज बांधे फिरता है ॥ ३८१ ॥

रहै प्रजा धन जतन सों, जहँ बांकी तरवार ।
सो फल कोउ न लै सकै, जहां कटीली डार ॥ ३८२ ॥

प्रजा का धन वहीं यत्न से रहता है जहां बांकी तलवार हो । वह फल कोई नहीं ले सकता जहां कांटेदार शाख हो ॥ ३८२ ॥

जासों परिचय होय सो, पावै तिहि उनमान ।
रुपिया को खोटो खरो, कैसे कहे अजान ॥ ३८३ ॥

जिसका जिससे परिचय हो, वह उसे पहचान कर पालेता है । अनजान आदमी कैसे कहे कि रुपया खोटा है या खरा ॥ ३८३ ॥

बिना प्रयोजन भूलि हू, ठठिये नाहिं ठाट।
जैबो नहिं जा गांव को, ताकी पूछ न बाट ॥ ३८४ ॥

बिना प्रयोजन के भूलकर भी ठाट बाट न करो। जिस गांव को जाना ही नहीं उसका रास्ता ही क्यों पूछो ॥ ३८४ ॥

आपहि कहा बखानियै, भली बुरी को जोग।
उमड़े घन की बात कौं, कहैं बटाऊ लोग ॥ ३८५ ॥

भली और बुरी बात को कैसे स्वयं बयान किया जाय। उमड़े हुवे बादल की बात सब यात्री लोग किया करते हैं ॥ ३८५ ॥

इंगित तैं आकार तैं, जान लेत जो भेंट।
तासों बात दुरै नहीं, ज्यों दाई सों पेट ॥ ३८६ ॥

इशारे से और सूरत से जो भेंट करने के कारण को जान लेता है उससे बात छिपी नहीं रहती जैसे दाई से पेट (छिपा नहीं रहता) ॥ ३८६ ॥

जाने सो पूछे कहा, आदि अंत बिरतंत।
घर जन्मे पशु के कहा, देखत कोऊ दंत ॥ ३८७ ॥

जो बात को जानता है वह शुरु से अन्त तक के वृत्तान्त को क्यों पूछे। क्या कोई घर में पैदा हुए पशु के दांत देखा करता है ॥ ३८७ ॥

कहबो कछु करबो कछु, है जग की विधि दोय।
देखन के अरु खान के, और दुरद रद होय ॥ ३८८ ॥

कहना कुछ और करना कुछ यह दोनों ही संसार की चालें हैं। हाथी के खाने के दांत और, और दिखाने के दांत और ही होते हैं ॥ ३८८ ॥

आप कहे नाहिन करै, ताको है यह हेत।
आप जाय नहिं सासरै, औरन को सिख देत ॥ ३८९ ॥

स्वयं कहे तो सही परन्तु करे ना, उसकी बात ऐसी बात है जैसे कोई स्वयं तो सुसराल न जावे और दूसरों को जाने की शिक्षा देवे ॥ ३८९ ॥

जो कहियै सो कीजियै, पहिले करि निर्धार।
पानी पी घर पूछबौ, नाहिं न भलौ विचार ॥ ३९० ॥

पहले से ही निश्चय करके, जो कहो वही करो । 'पानी पीकर पूछना कि किसका घर है', यह अच्छा विचार नहीं ॥ ३९० ॥

पीछे कारज कीजिये, पहिले जतन विचार ।
बड़े कहत हैं बाँधिये, पानी पहिले पार ॥ ३९१ ॥

पहले परिश्रम का विचार करके पीछे काम को करिये । बड़े आदमी कहा करते हैं कि पानी आने से पहले बांध बांधना चाहिये ॥ ३९१ ॥

अरि हू बूझै मंत्र को, कहिये सांच सुनाय ।
ज्यों भीषम पांडवन को, दीन्हो मरम बताय ॥ ३९२॥

शत्रु भी यदि सलाह पूछे तो सच २ सुना दीजिये । जैसा भीष्म ने पांडवों को रहस्य बता दिया ॥ ३९२ ॥

कहिये तासों जो हितू, भली बुरी हू जाइ ।
चोर करे चोरी तऊ, सांच कहे घर आइ ॥ ३९३ ॥

उसी से भली बात जाकर कहो जो अपना हितू (भलाई करने वाला) हो । चोर यदि चोरी भी करता है तो घर आकर सच २ कह देता है ॥३९३

संपत बीते बिलसबो, सुख को चाहे कोय ।
रूख उखारे फूल फल, कहधौं कैसे होय ॥ ३९४ ॥

धन दौलत नष्ट होजाने पर यदि कोई विलास और सुख चाहता है तो उससे कहो कि वृक्ष के उखड़ जाने पर फूल और फल कैसे हो सकते हैं ? ३९४

रण सन मुख पग सूर कै, वचन कहैं ते सन्त ।
निकस न पीछे होत है, ज्यों गयंद के दंत ॥ ३९५ ॥

सन्त आदमी यह कहते हैं कि शूरवीर के पैर युद्ध के सामने ही रहते हैं । जैसे हाथी के दांत एक दफे निकल कर पीछे नहीं होते ॥ ३९५ ॥

आय बसे जिहिं दिन सुछिन, जे सज्जन चित माहिं ।
चित्र महावत दुरद पर, ज्यों चढि उतरै नाहिं ॥ ३९६ ॥

जो अच्छे आदमी हैं वे चित्त में जिस दिन आजांय वही अच्छा क्षण है ।

जैसे महावत की तस्वीर हाथी पर एक दफे चढ़कर (अर्थात् उसके खयाल में आकर) फिर नहीं उतरती ॥ ३९६ ॥

बिन पूछे ही कहत है, सज्जन हित के बैन।
भले बुरे को कहत है, ज्यों तमचुर गत रैन ॥ ३९७ ॥

बिना पूछे ही अच्छे आदमी भलाई के वचन कह देते हैं। जैसे सूर्य भले बुरे सब आदमियों को बिना पूछे कहता है कि रात्री चली गई ॥३९७॥

बिछुरे गये बिदेस हू, सज्जन बिछुरै नाहिं।
दूर भये ज्यों कुररिकी, सुरति सुतन के माहिं ॥ ३९८ ॥

परदेस में बिछड़ कर चले जाने पर भी सज्जन मनुष्य नहीं बिछड़ते। जैसे दूर होने पर भी टिटिहरी की लगन बच्चों में होती ही है ॥ २९८ ॥

बसिये तहाँ विचारि कै, जहाँ दुष्ट गति नाहिं।
होत न कबहूं भवँर डर, ज्यों चंपक बन माहिं ॥ ३९९ ॥

वहीं विचार कर वास करना चाहिये जहां पर नीच आदमियों का निवास नहीं। जसे चमेली के बन में भौंरे का डर नहीं रहता। (क्योंकि भौंरा चमेली पर नहीं जाता) ॥ ३९९ ॥

दान देत धन-हीनता, होत तथापि बखान।
दुरबल तऊ सराहिये, दुरद झरत जब दान ॥ ४०० ॥

दान देते २ यदि धन का अभाव हो जावे फिर भी उसकी प्रशंसा ही होती है। हाथी जब दान को (मस्तक से मद को) झर देता है और कमजोर होजाता है फिर भी उसको सब कोई सराहते हैं ॥ ४०० ॥

ठीक किये बिन और की, बात सांच मत थर्प।
होत अँधेरी रैन में, परी जेवरी सर्प ॥ ४०१ ॥

स्वयं निश्चित किये बिना दूसरे की बात को सच न मान। अंधेरी रात में पड़ी हुई रस्सी भी सांप मालूम देती है ॥ ४०१ ॥

झूठ बिना फीकी लगै, अधिक झूठ दुख भौन।
झूठ तितौ ही बोलिये, ज्यों आटे में लौन ॥ ४०२ ॥

झूठ बोले बिना बात फीकी सी लगती है और ज्यादह झूठ दुःख का घर है, इस लिये झूठ उतना ही बोले जितना आटे में नमक ॥ ४०२ ॥

ठौर देखकै हूजिये, कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ो फिरत है, बांबी सूधो सांप ॥ ४०३ ॥

मनुष्य को चाहिये कि जगह देखकर टेढ़ी और सीधी चाल वाला होवे। सांप बाहर तो टेढ़ा फिरता है परन्तु बिल में सीधा होकर जाता है ॥ ४०३ ॥

एकतहू रह सजन खल, तजत न अपनो रंग।
मणि विष-हर विष-कर सरप, सदा रहत इक संग ॥४०४॥

एक ही जगह पर रहते हुवे सज्जन और दुष्ट पुरुष अपना २ रंग (स्वभाव) नहीं छोड़ते। विष को हरने वाली मणि और विषको पैदा करने वाला सांप, यह दोनों सदा ही एक साथ रहते हैं ॥ ४०४ ॥

भले बुराई आदरैं, कौन सकै निरवारि।
सीत विमल पावन करत, चलत नीच गति वारि ॥४०५॥

भले आदमी यदि बुराई का आदर करें तो कौन उन्हें इस बात से हटा सकता है ? पानी की गति हमेशा नीचे की तरफ होती है यद्यपि वह ठण्डा साफ और पवित्र करने वाला है ॥ ४०५ ॥

दोऊ चाहैं मिलन को, तो मिलाप निरधार।
कबहूं नाहिन बाजि है, एक हाथ सों तार ॥ ४०६ ॥

दोनों यदि मिलाप करना चाहें तो मिलाप निश्चय समझो। एक हाथ से कभी ताड़ी नहीं बजती ॥ ४०६ ॥

हिये दुष्ट के वदन ते, मधुर न निकसै बात।
जैसे करुवी बेल के, को मीठे फल खात ४०७ ॥

दुष्ट हृदय पुरुष के मुख से कभी मीठी बात नहीं निकलती। जैसे कड़वी बेल से कौन मीठा फल खा सकता है ॥ ४०७ ॥

रूखे बचन मिलाप में, कहत होत रस भंग।
बीन वजत ज्यों तार के, टूटे रहत न रंग ॥ ४०८ ॥

मिलाप के समय रूखे वचन कहने से रस में विघ्न पड़ता है। बीन के बजते २ यदि तार टूट जांय तो मजा नहीं रहता ॥ ४०८ ॥

आप अकारज आपनो, करत कुबुध के साथ।
पांय कुल्हारी देत है, मूरख अपने हाथ ॥ ४०९ ॥

मनुष्य मूर्ख आदमी के साथ रहकर अपना काम आप बिगाड़ बैठता है। मूर्ख अपने पैर पर आप कुल्हाड़ी मार देता है ॥ ४०९ ॥

ताही को करिये जतन, रहिये जेंहि आधार।
को काटे ता डार को, बैठे जाही डार ॥ ४१० ॥

उसी के साथ यत्न करना चाहिये जिसके आश्रय में रहा जाय। कौन मनुष्य उस शाख को काटता है जिस शाख पर वह स्वयं बैठा हो ॥४१०॥

न्याय चलत बिगरै कछू; तौ न करो अफसोस।
धार परत जो राजपथ, तौ न देत कोऊ दोस ॥ ४११ ॥

न्याय क रास्ते पर चलते हुवे याद कुछ बिगड़ भी जाय तो मनुष्य अफसोस न करे। यदि कोई राजपथ पर गिरजाय तो कोई उसे दोष नहीं देता ४११

भले भली ही कहत हैं, पै न कहत हैं दोष।
सूरदास कहे अंध को, उपजावत है तोष ॥ ४१२ ॥

भले आदमी अच्छी बातही कहा करते हैं दोष युक्त बात नहीं कहते। अन्धे को यदि सूरदास कहा जाय तो वह सन्तोष ही पैदा करता है ॥४१२॥

सदा सथान प्रधान है, बल न प्रधान बताव।
नाग डरावत गरुड को, हर गर हार प्रभाव ॥ ४१३ ॥

सदा स्थान ही प्रधान होता है, बल को कोई प्रधान नहीं बताता। सांप महादेव के गले का हार होने के प्रभाव से ही गरुड़ को डराता है। (वैसे सांप स्वयं गरुड़ से डरता है) ॥ ४१३ ॥

जा में विद्या नारदी, बिगरन देर न लाग।
पैस चौर भुँसि स्वान को, कहत धनी सों जाग ॥ ४१४ ॥

निस में नारद मुनि की सी विद्या होती है वह काम बिगाड़ने में देर

नहीं लगाता। वह चोर को कहता है 'घुस'; कुत्ते को कहता है 'भौंक'; और मालिक को कहता है 'जाग' ॥ ४१४ ॥

भाग-हीन को ना मिले, भली वस्तु को भोग।
दाख पके मुख पाक को, होत काग को रोग ॥ ४१५ ॥

बद किस्मत को अच्छी चीज का भोगना नसीब नहीं होता। दाख पकने के समय कौवे को मुख पाक (मुंह पकने) का रोग होजाता है (जिससे वह दाख खा ही नहीं सकता) ॥ ४१५ ॥

सब कोऊ चाहत भलो, मित्र मित्र की ओर।
ज्यों चकई रवि को उदय, शशि को उदय चकोर ॥४१६॥

सब कोई अपने २ मित्र की भलाई चाहता है। जैसे चकवी सूर्य के उदय को और चकोर चन्द्रमा के उदय को चाहता है। (चकवी को सूर्य प्यारा है और चकोर को चन्द्र) ॥ ५१६ ॥

भले वंश सन्तति भली, कबहूं नीच न होय।
ज्यों कंचन की खान में, कांच न उपजे कोय ॥ ४१७ ॥

अच्छे खान्दान में सन्तात भी अच्छी होती है कभी नीच सन्तान नहीं होती। जैसे सोने की खान में शीशा कभी नहीं पैदा होता ॥ ४१७ ॥

सूरवीर के वंश में, सूरवीर सुत होय।
ज्यों सिंहनि के गर्भ में, हिरन न उपजै कोय ॥ ४१८ ॥

बहादुर आदमी के कुल में बहादुर पुत्र ही पैदा होता है। जैसे शेरनी के पेट में हरिण नहीं पैदा होता ॥ ४१८ ॥

करे न कबहू साहसी, दीन-हीन सा काज।
भूख सहे पर घास को, नहिं खावे मृगराज ॥ ४१९ ॥

साहसी मनुष्य कभी कमजोर और कायर आदमी का सा काम नहीं करता। शेर भूख सह लेगा परन्तु घास कभी न खायेगा ॥ ४१९ ॥

मान धनी नर नीच पै, जांचै नाहीं जाय।
कबहुं न मांगे स्यार पै, बलि भूख्यो मृगराय ॥ ४२० ॥

मान को ही धन समझने वाला आदमी नीच आदमी के पास जाकर कभी नहीं मांगता। भूखा शेर कभी गीदड़ से अपना भोजन नहीं मांगता ॥४२०॥

छोटे नर सों बडन को, कबहूं बुरो न होय॥
कृसहिं आगि कर ना सके, तपत उदधि को तोय ॥४२१॥

छोटे आदमियों से बड़े आदमियों का कभी बुरा नहीं होसकता । थोड़ी सी आग समुद्र के पानी को गर्म नहीं कर सकती ॥ ४२१ ॥

नीच हूं उत्तम संग मिलि, उत्तम ही ह्वै जाय।
गंग संग जल निंद्यहू, गंगोदक के भाय ॥ ४२२ ॥

नीच मनुष्य भले पुरुष के साथ मिलकर भला ही होजाता है । गन्दा पानी गंगा के साथ मिलकर गंगा-जल के समान होजाता है ॥ ४२२ ॥

अधिक चतुर की चातुरी, होत चतुर के संग।
नग निरमल के डांक ते, बढत जोति छबि रंग ॥ ४२३ ॥

चतुर मनुष्य की चतुराई चतुर के साथ होजाती है। स्वच्छ नग के जोड़ से (सोना चांदी बगैरह की) चमक, शोभा और रंग बढ़ जाते हैं ॥४२३॥

परतच्छ नीके देखिये, कह वरनौ कोउ ताहि।
कर कंकन को आरसी, को देखत है चाहि ॥ ४२४ ॥

जो प्रत्यक्ष अच्छा दीखता हो कहो उसे कौन बखानता है । हाथ के कंगण को कौन शीशे से देखना चाहता है ? ॥ ४२४ ॥

सहज शील गुण सजन के, खल बुधि होत न भंग।
रतन दीप की ज्यों सिखा, बुझत न बात प्रसंग ॥ ४२५ ॥

अच्छे पुरुष के स्वाभाविक गुण दुष्ट के द्वारा नष्ट नहीं होते। जैसे मणि के दीये की लाट, वायु के संग से नहीं बुझती ॥ ४२५ ॥

रति रस श्रुति रस राग रस, पाय न चाहत और।
चाखत मधु अरविन्द को, ले न ईख रस भौर ॥ ४२६ ॥

रति (मैथुन इत्यादि) सुनने और राग के रस को पाकर मनुष्य और

कुछ नहीं चाहता; भौंरा कमल के मिठास को चखता हुवा गन्ने के रस को नहीं लेता ॥ ४२६ ॥

मोह महातम रहत है, जो लौं ज्ञान न होत।
कहा महातम रहि सकै, भये अदीत उदोत ॥ ४२७ ॥

जब तक ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होता तब तक मोहरूपी अन्धेरा बना रहता है। सूर्य के उदय होने पर क्या अन्धेरा रह सकता है ? ॥ ४२७ ॥

सबुध अबुध की सेव को, यह सरूप जिय थाप।
थल में रोपित कमल ज्यों, बधिर कर्ण ज्यों जाप ॥४२७॥

बुद्धिमान यदि मूर्ख की सेवा करता हो तो उनका ऐसा स्वरूप हृदय में धारण करलो; (कैसा ?) जैसे शुष्क जगह पर लगाया हुवा कमल या बहिरे के कान में किया हुवा जाप ॥ ४२८ ॥

यों सेवा राजान की, दीन्ही कठिन बताय।
ज्यों चुम्बन व्याली बदन, सिंह मिलन के भाय ॥ ४२९ ॥

राजाओं की सेवा करना बहुत कठिन है यह इस तरह कठिन बताया गया है, जिस तरह सांप के मुंह का चूमना या शेर के साथ मिलाप करना ॥४२९॥

पण्डित अरु बनिता लता, शोभित आश्रय पाय।
है माणिक बहु मोल को, हेम जटित छबि छाय ॥ ४३० ॥

विद्वान्, स्त्री और बेल यह सहारा पाकर ही सुहाते हैं। मोती यद्यपि बहुत कीमत वाला है फिर भी सोने के साथ जड़ा हुवा ही शोभा को पाता है ॥ ४३० ॥

इक गुन ते शोभा लहैं, इक अवगुण अवरोह।
शोभ उरोजन पीनता, त्यों कटि कृसता सोह ॥ ४३१ ॥

यदि एक गुण से कोई शोभा को पाता है तो एक दोष से भी कभी २ बड़ाई होती है। स्तनों (उरोजन) की खूबसूरती जैसे मोटे पन में है वैसे कमर की शोभा पतलेपन में है ॥ ४३१ ॥

सुजन सुजन के दरस ही, पावत जिय सन्तोष।
लहत कच्छ के बच्छ ज्यों, सोम दृष्टि ते पोष॥ ४३२॥

भले आदमी भले आदमियों के ही दर्शन से हृदय में सन्तोष को पाते हैं। जैसे कछुवे के बच्चे चन्द्रमा के दर्शन से ही पुष्टि को प्राप्त होते हैं॥४३२॥

सब संपति फल देत है, सुहृद जनन को हेत॥।
दूरहिं सूरज उदित ज्यों, कमलन को सुख देत॥ ४३३॥

मित्रों के लिये भी धन दौलत ही फलको देने वाली होती है, (अर्थात् मित्र भी दौलत होते हुवे मित्रता निभा सकते हैं अन्यथा नहीं) जैसे दूर से ही सूर्य उदय होकर कमल के फूलों को सुख देता है। (क्योंकि सूर्य के पास सम्पत्ति है)॥ ४३३॥

ऊंचे पद को पाय लघु, होय तुरत ही पात।
घन तैं गिर पर गिरत जल, गिर हूं तै ढरि जात॥४३४॥

छोटा आदमी ऊंचे स्थान को पाकर जल्दी ही गिर जाता है। पहिले तो पानी बादल से गिरकर पहाड़ पर आता है और फिर वहां से भी और नीचे गिर जाता है। (पानी की गति हमेशा नीचे की तरफ ही होती है, यदि ऊंच पद को प्राप्त कर भी लेता है तो भी उसकी यही गति होती है॥ ४३४॥

अपनी प्रभुता को सबै; बोलत झूठ बनाय।
वेश्या बरस घटाव हीं, योगी बरस बढ़ाय॥ ४३५॥

अपनी २ बड़ाई को लोग झूठ बोलकर ही बताया करते हैं। वेश्या अपनी आयु वर्षों को घटा कर और योगी वर्षों को बढ़ाकर ही कहा करते हैं॥ ४३५॥

अपने लालच के लिये, दुख हूं आवैं दाय।
कान बिधावैं खाय गुर, पहिरैं वीर बधाय॥ ४३६॥

अपने लालच के लिये यदि दुःख भी आवे तो लोग सह लेते हैं। जैसे स्त्रियां गुड़ खाकर कान छिदवाती हैं और बालियां पहिनती हैं॥ ४३६॥

धनी गुनी को न्याय ही, धन अरपै धरि हेत।

सगुन पात्र को कूप हूं, मिलतहि जीवन देत ॥ ४३७ ॥

धनी और गुणीके न्यायके भरोसे ही लोग धरोहर के तौर पर अपना २ धन अर्पण करदेते हैं। कुआं रस्सी से युक्त पात्र को मिलते ही अपना जीवन (पानी) दे देता है ॥ ४३७ ॥

गुन सनेह युत होत है, ताही की छबि होत।
गुन सनेह के दीप की, जैसे जोति उदोत ॥ ४३८ ॥

गुण भी यदि प्रेम (स्नेह) से युक्त हो तो उसकी शोभा होती से। बत्ती (गुन) और तेल (स्नेह) वाले दीए की जैसे चमक प्रकाशित होती है ॥ ४३८ ॥

सुनि सुनि मीठी बात को, को चाहत कटु बात।
चाखि दाख के स्वाद को, कौन निबौरी खात ॥४३९॥

मीठी बात को सुन २ कर कौन कड़वी बात को चाहता है। दाख का स्वाद लेकर कौन नीम खाता है ? ॥ ४३९ ॥

रस की कथा सुनी न तिहिं, कूर कथा की चाहि।
जिन दाखैं चाखी नहीं, मिष्ट निबौरी ताहि ॥ ४४० ॥

जिसने रस (प्रेम, शृंगार) की कथा नहीं सुनी उसी को गन्दी कथाओं की चाह होती है। जिन्हों ने दाख को नहीं चखा उन के लिये नीम ही मीठा है ॥ ४४० ॥

प्रेमी प्रेम न छांडहि, होत न पन ते हीन।
मरे परे हूं उदर में, ज्यों जल चाहत मीन ॥ ४४१ ॥

प्रेमी लोग प्रेम को नहीं छोड़ते और अपनी प्रतिज्ञा से नहीं हटते। मरे हुवे होने पर भी जैसे मछली पेट में पानी को चाहती है ॥ ४४१ ॥

अति उदारता बड़ेन की, कहं लौं बरनैं कोय ॥
चातक जाचे तनक कन, बरस भरै घन तोय ॥ ४४२ ॥

बड़े आदमियों की उदारता कौन कहां तक वर्णन करे। चातक मांगता तो थोड़ा सा जल है, किन्तु बादल उसके लिये कितना अधिक बरसा देता है ॥ ४४२ ॥

बड़े जु चाहैं सो करैं, करन मतों उर धारि।
हरि गिरि तारे जलधि पर, करी शिला ते नारि॥ ४४३॥

बड़े आदमी एक बार अपने हृदय में करने के लिये जिस बुद्धि को धारण कर लें, तो जो चाहें सो कर सकते हैं। परमात्मा (रामचन्द्र) ने समुद्र में पहाड़ तैराये और पत्थर से औरत बनाई (अहिल्या को रामचन्द्र ने छूकर पत्थर से फिर नारी बना दिया था)॥ ४४३॥

औसर बीते जतन को, करिबो नहिं अभिराम।
जैसे पानी बह गये, सेत बन्ध केहि काम॥ ४४४॥

अवसर बीत जाने पर परिश्रम करना नहीं सुहाता। जैसे कोई मनुष्य पानी में बह गया और बाद में पुल बांधा जाय तो किस काम का॥ ४४४॥

दुष्ट संग बसिये नहीं, दुख उपजत इहिं भाय।
घसत बांस की अगिन तें जरत सबै बनराय॥ ४४५॥

दुष्ट मनुष्य के साथ वास न करो, इस से दुःख पैदा होता है। घिसते हुवे बांसों की आग से जैसे सब बन के वृक्ष जल जाते हैं॥ ४४५॥

करै अनादर गुननि को, ताहि सभा छवि जाय।
गज कपोल शोभा मिटत, ज्यों अलि देत उड़ाय॥ ४४६॥

जिस सभा में गुणियों का अपमान होता है उस सभा की शोभा नष्ट हो जाती है। जैसे भौंरे को उड़ा देने पर हाथी के गाल (गण्डस्थल) की शोभा मिट जाती है॥ ४४६॥

कहूं कहूं गुन ते अधिक, उपजत दोष शरीर।
मीठी बानी बोलि कै, परत पींजरा कीर॥ ४४७॥

कहीं २ अधिक गुणों के होने से भी शरीर में दोष पैदा होजाते हैं। जैसे तोता मीठी बाणी बोलकर पिंजड़े में बन्ध जाता है॥ ४४७॥

भले बुरे निबहैं सबै, महत पुरुष के संग।
चंद सांप जल आगिन ए, रहत शम्भु के अंग॥ ४४८॥

बड़े पुरुष के साथ अच्छे और बुरे सबका निर्वाह होजाता है। चन्द्रमा,

सांप, पानी और आग यह सब महादेव के शरीर में रहते हैं ॥ ४४८ ॥

बिना कहे हू सत पुरुष, पर की पूरै आस ।
कौन कहत है सूर को, घर घर करत प्रकास ॥ ४४९ ॥

बिना कहे ही सन्त लोग दूसरों की आशा को पूरा कर देते हैं । कौन सूर्य को कहता है, परन्तु वह घर २ में प्रकाश करता है ॥ ४४९ ॥

कछु कहि नीच न छेड़िये, भलो न वाको संग ।
पाथर डारे कीच में, उछर बिगारै अंग ॥ ४५० ॥

कुछ भी कह कर नीच पुरुष को मत छेड़ो, उसका साथ अच्छा नहीं । कीचड़ में यदि पत्थर डालो तो वह कीचड़ को उछालकर अंगों को बिगाड़ देता है ॥४५०॥

हीन जानि न विरोधिये, बहुतों जन दुखदाय ।
रजहू ठोकर मारिये, चढै शीश पर आय ॥ ५५१ ॥

अपने से कमजोर जानकर बहुत आदमियों का विरोध न करो, यह बात दुःखदाई है । मट्टी को पैर से ठोकर मारें, तो वह भी सिर पर आकर चढ़ जाती है ॥४५१॥

नाहिं करत उपकरन ते, काज सिद्ध बलवान ।
मुनि बन बसिवो संग मृग, किय अगस्त दधि पान॥४५२॥

बलवान् आदमी साधनों से काम सिद्ध नहीं किया करते । अगस्त्य मुनि बन में निवास करते थे और हरिणों के साथ रहते थे फिर भी समुद्र को पी गये ॥ ४५२ ॥

बिना दिये न मिलै कछू, यह समझै सब कोय ।
होत शिशिर में पात तरु, सुरभि सपल्लव होय ॥४५३॥

यह सब कोई समझते हैं कि बिना दिये कुछ नहीं मिलता । शिशिर ऋतु में वृक्षों का पतझड़ होजाता है (अर्थात् पत्ते झर जाते हैं) तब कहीं वसन्त में वृक्ष फिर पत्तों से युक्त होते हैं ॥ ४५३ ॥

यह निश्चय करि जानिये, जान हार सो जाय ।

गज के भुक्त कपित्थ के, ज्यों गिर बीज बिलाय ॥ ४५४ ॥

यह निश्चय मानिये कि जाने वाली चीज जरूर चली जाती है। जैसे हाथी से खाये गये कपित्थ (कैथ) फल के बीज गिरकर नष्ट होजाते हैं ॥४५४॥

दूर कहा नियरै कहा, होनहार सो होय।
धुर सींचे नालेर के, फल में निकरै तोय ॥ ४५५ ॥

क्या दूर और क्या नजदीक, जो होनहार है वह अवश्य होता है। नारियल की जड़ को सींचा जाता है परन्तु फल में पानी निकलता है ॥४५५॥

आये आदर ना करै, पीछे लेत मनाय।
घर आये पूजै न अहि, बांबी पूजन जाय ॥ ४५६ ॥

घर में आने पर तो सम्मान नहीं करते परन्तु पीछे से मनाते हैं। घर में आये सांप को तो कोई पूजता नहीं उसके बिल पर उसे पूजने जाते हैं ४५६

कहूं अनादर पाय के गुनी न करहु अंदेश।
मुद्रा है तो करहिंगे, सब कोऊ आदेश ॥ ४५७ ॥

गुणी मनुष्य को कहीं पर भी अपमान पाकर दिल में शंका नहीं करनी चाहिये। यदि रुपया है तो सब कोई कहा मानेंगे और पूजेंगे ॥ ४५७ ॥

अपने अपने समय पर, सब को आदर होय।
भोजन प्यारो भूख में, तिस में प्यारो तोय ॥ ४५८ ॥

अपने २ समय पर सबका आदर होता है। भूख के समय भोजन प्यारा होता है और प्यास के समय पानी ॥ ४५८ ॥

होय सो होय हिसाब सों, बिन हिसाब नहिं होय।
भूखे वदन ते अन्न ज्यों, भख न नाक ते कोय ॥ ४५९ ॥

जो कुछ होता है हिसाब से ही होता है बिना हिसाब के कुछ नही होता। भूखे होने पर भी अन्न को जैसे हर कोई मुंह से ही खाते हैं नाक से कोई नहीं खाता ॥ ४५९ ॥

जिह डर डर करिये जतन, उपजत सूर्य अमेट।
लगै दूखती चोट ज्यों, होति कनौडे भेंट ॥ ४६० ॥

जिसके डर से डरकर कोई यत्न किया जाता है वही पैदा होजाता है, और वह सूर्य की तरह अमिट है। दुखती हुई जगह पर जैसे कोई चोट लग जाय तो फिर उसका और चोट से भेंट होजाती है ॥ ४६० ॥

मीठी कोऊ वस्तु नहिं, मीठी जाकी चाह ।
अमली मिसरी छांडिकै, आफू खात सराहि ॥ ४६१ ॥

कोई वस्तु मीठी नहीं, मीठी वही है जिसकी चाह है । अफीम खाने वाला जैसे मिश्री को छोड़कर प्रशंसा के साथ अफीम खाता है ॥ ४६१ ॥

बडी बडाई नीच को, दीजे अपने काम ।
खरहू को बोलत पथिक, कहत विनायक नाम ॥ ४६२ ॥

नीच आदमी को उसके काम के लिये बड़ाई दे देनी चाहिये । यात्री लोग गधे को भी विनायक (गणेश) के नाम से पुकारते हैं ॥ ४६२ ॥

कहा भयौ जो नीच को, देत बडाई कोय ।
कहत विनायक नाम पै, खर न विनायक होय ॥ ४६३ ॥

क्या हुवा यदि नीच आदमी को कोई बड़ाई दे देता है । पुकारते तो हैं विनायक के नाम से, परन्तु गधा विनायक नहीं होजाता ॥ ४६३ ॥

भले बुरे को जानवो, जान बचन के बंध ।
कहै अंध को सूर इक, कहै अन्ध को अन्ध ॥ ४६४ ॥

बचन बोलने से ही भले बुरे की पहचान करनी चाहिये । एक तो अन्धे को सूरदास कहता है और एक उसे अन्धा कहता है ॥ ४६४ ॥

जानि बूझकर करत नर, अपने हेत अहेत ।
झूठी सांची बात पर, दोउ मुचुलका देत ॥ ४६५ ॥

जान बूझकर ही मनुष्य अपनी भलाई और बुराई करता है । झूठी और सच्ची दोनों बातों पर लोग जमानत दे देते हैं ॥ ४६५ ॥

चिरजीवी तनहू तजै, जाको जग जस वास ।
फूल गयेहू फूल की, रहै तेल में वास ॥ ४६६ ॥

शरीर छूट जाने पर भी संसार में चिरंजीव वही है जिसका जग में नाम

है। फूल के नष्ट होजाने पर भी फूल की सुगन्ध तेल में रह जाती है॥४६६॥

बहुत भए किंहि काम के, भार निवाहक एक।
शेष धरे धर शीश पर, मेंडक भखी अनेक ॥ ४६७ ॥

बहुत हुवे तो किस काम क, भार उठाने वाला एक ही अच्छा है। मेंडक खाने वाले सांप ता अनेक हैं परन्तु शेषनाग ही पृथ्वी को धारण करताहै४६७

वृद्धि न ह्वै है पाप ते, वृद्धि धरम ते धार।
सुन्यो न देख्यो सिंह के, मृग को सो परिवार ॥ ४६८ ॥

पाप से किसी की वृद्धि नहीं होती, धर्म से ही वृद्धि होती है, यह दिल धारो। शेर का, हरिणों का सा परिवार न कभी देखा है और न कभी सुना है। (शेर क्योंकि हिंसा करने के कारण पापी है इस लिये उसके वंश की वृद्धि नहीं) ॥ ४६८ ॥

देखतकों यों कछु नहीं, मुख पै खल की प्रीति।
मृग तृष्णा में होति है, ज्यों जल की परतीति ॥ ४६९ ॥

यों ही देखने से कुछ मालूम नहीं होती, मुख पर. ही दुष्ट की प्रीति होती है, (आगे पीछे नहीं)। मृग तृष्णा में जैसे पानी की प्रतीति होती है, (उसी तरह नीच आदमी की प्रीति भी धोखा देने वाली होती है) ॥४६९॥

ऊपर दरसै सुमिल सी, अन्तर अनमिल आंक।
कपटी जनकी प्रीति है, खीरा की सी फांक ॥ ४७० ॥

ऊपर से तो अच्छी तरह मिली हुई परन्तु बीच में अनमिली ऐसी, खीरे की फांक की तरह दुष्ट मनुष्य की प्रीति होती है ॥ ४७० ॥

निबल सबल के परस ते, सबलन सों अनखात।
हनत हिमायत की गधी, हेराकी को लात ॥ ४७१ ॥

कमजोर बलवान् के साथ होने से बलवालों से भी छेड़ छाड़ करता है। हिमायत की जाने वाली गधी हथिनी को भी लात मारती है ॥४७१॥

दोष लगावत गुनिन को, जाको हृदय मलीन।
धरमी को दम्भी कहै, छमीन को बलहीन ॥ ४७२ ॥

जिसका दिल साफ़ नहीं होता वह गुणी मनुष्य को भी दोष लगाता है। धर्मात्मा को ऐसे आदमी ढोंगी कहते हैं और क्षमा करने वाले को बल से हीन बतलाते हैं ॥ ४७२ ॥

द्वै ही गति है बडेन की, कुसुम मालती भाय ।
केशव के शिर पर रहै, के बन मांहि विलाय ॥ ४७३ ॥

मालती के फूल की तरह बड़े आदमियों की दो ही गति होती हैं । या तो श्रीकृष्ण के शिरपर रहे या बन में ही नष्ट होजावे ॥२७३॥

सब बिधि डरिये दुष्ट सों, रहिये जतन समेत ।
शंभु सुधाकर शिर धर्‍यो, विष विषधर के हेत ॥४७४॥

हर तरह से दुष्ट से डरना चाहिये और सावधानी से रहना चाहिये । महादेव ने जहां चन्द्रमा को धारण किया है वहां सांप के लिये जहर भी धारण किया है ॥ ४७४ ॥

खाय न खर्चै सूम धन, चोर सबै ले जाय ।
पीछे ज्यों मधु मच्छिका, हाथ मलै पछिताय ॥ ४७५ ॥

सूम धनको न तो स्वयं उपभोग करता है न खर्चता है, उस के सब धन को चोर ले जाते हैं । ऐसा आदमी पीछे से शहद की मक्खी की तरह हाथ मल २ कर पछताता है ॥ ४७५ ॥

जगत बहुत जन तदपि मन, बिन सज्जन अति दीन ।
शशि तारा निशि हैं तऊ, रवि बिन नलिन मलीन ॥४७६॥

संसार में बहुत आदमी हैं, फिर भी मन, बिना सज्जन के मलीन ही रहता है । रात में चन्द्र और तारे हैं परन्तु सूर्य के बिना कमल मलिन ही रहता है ॥४७६॥

कोऊ कहै ना जानिये, जोतिवंत सुनि कोय ।
हाथ दिया लै देखिये, ऐसी आगन होय ॥ ४७७ ॥

कोई भी तेज वाला आदमी सुनकर या किसीके कहने से नहीं आना जाता । (वह स्वयं संसार में प्रकाशित होता है) हाथ में दीया ले कर कोई

नहीं देखता कि आग ऐसी होती है ॥ ४७७ ॥

खल निज दोष न देखई, परके दोषहिं लागि।

लख न पग तर सब लखैं, परबत वरती आगि ॥ ४७८ ॥

दुष्ट मनुष्य अपने दोष नहीं देखा करता, दूसरे के दोषों में ही लगा रहता है। पैरों के नीचे की आग कोई नहीं देखता, पहाड़ की आग को सब देखा करते हैं ॥ ४७८ ॥

जैसो जैसो अधिक गुन, तैसो होय मिलाय।

अहि-उर विषगल अनलचख, शिव शशि शीशबसाय४७९

जितना २ ज्यादह गुण होगा वैसे २ ही स्थान मिलेगा। महादेव ने सांप को हृदय पर, जहर को गले में, आग को आंखों में और चन्द्रमा को सिर पर क्रमशः बसाया हुवा है (उनके गुणों के क्रम से) ॥ ४७९ ॥

भागहीन को देवहू, देत सुलेत बनैन।

दीठ परे जहं वस्तु तहँ, चले बंद कै नैन ॥ ४८० ॥

भाग्यहीन को विधाता देता भी है तो उस से लेते नहीं बनता। जहां कोई वस्तु दीख भी पड़ती है वहां आंखें बन्द कर के चला जाता है ॥४८०॥

दिवस भले बिगरै न कछु, रहौ निचीते सोय।

आवे चोरी करन को, चोर आंधरो होय ॥ ४८१ ॥

दिन यदि अच्छे हैं तो कुछ नहीं बिगड़ता, निश्चिन्त होकर सोरहो। ऐसी दशा में चोरी करने के लिये आया हुवा चोर भी अन्धा होजाता है४८१

दान दीन को दीजिये, मिटे दरिद की पीर।

औषध ताको दीजिये, जाके रोग शरीर ॥ ४८२ ॥

दान गरीब को ही दीजिये जिससे उसकी गरीबी का दुःख मिट जाय। उसी को दवाई देनी चाहिये जिसके शरीर में रोग हो ॥ ४८२ ॥

सबसों आगे होयके, कबहुँ न करिये बात।

सुधरे काज समान फल, बिगरै गारी खात ॥ ४८३ ॥

सब से आगे होकर कभी बात न करो। काम यदि बन जाय तो सबका

बराबर फल मिलता है, यदि बिगड़ जाय तो उसे गाली खानी पड़ती है ४८३

आवत समय विपत्ति के, मित्र शत्रु ह्वै जाय।
दुहत होत बछ बंधन को, थंभ मात को पाय ॥ ४८४ ॥

मुसीबत का समय आने पर मित्र भी दुश्मन होजाता है। दूध दोहने के समय बछड़े के बांधने के लिये माता का पैर थंभा होजाता है ॥ ४८४ ॥

उत्तम विद्या लीजिये, जदपि नीच पै होय।
परयो अपावन ठौर महँ, कंचन तजत न कोय ॥ ४८५ ॥

अच्छी विद्या ले लेनी चाहिये यदि वह नीच के पास भी हो। अपवित्र जगह पर पड़े हुवे सोने को कोई नहीं छोड़ता ॥ ४८५ ॥

निहचै कारन विपत को, किये प्रीति अति संग।
मृग के सुख मृगराज को, होत कबहुं अंग भंग ॥ ४८६ ॥

यह निश्चय जानो कि किसी के साथ बहुत प्रीति करना विपत्ति का कारण है। कभी २ हरिण के सुख के लिये शेर को अपना शरीर बहुत थका देना पड़ता है ॥ ४८६ ॥

ज्यों घर आवत शत्रु है, सजन देत सुख चाहि।
ज्यों काटै तरु मूल कोउ, छांह करत रह ताहि ॥ ४८७ ॥

भले आदमी घर में आये हुवे शत्रु को भी सुख देना चाहते हैं। जैसे कोई वृक्ष की जड़ को काटे तो वृक्ष उसपर छाया किये रहता है ॥४८७॥

ताको बुरा न ताकिये, जासों जग व्यवसाई।
छांह फूल फल देत तरु, क्यों तिहि कटन कराई ॥४८८॥

उसका बुरा नहीं सोचना चाहिये जिससे संसार का कारोबार चलता हो। जो वृक्ष छाया, फूल और फल सब कुछ देता है उसे क्यों काटा जाय॥४८८॥

दुष्ट भाव हिय मुख मधुर, तासों करहु न प्रीति।
भीतर विष पय घट भरयो, ताहि न छुई इहि रीति॥४८९॥

जिसके हृदय में बुरे भाव हों और मुंह मधुर हो उस से प्रीति न करो। उसे भी इस प्रकार नहीं छूना चाहिये जिस प्रकार उस घड़े को जो भरा हुआ

दूध से है परन्तु बीच में जिसके जहर है ॥ ४८९ ॥

दुष्ट न छाडें दुष्टता, बडी ठौरहू पाय ।
जैसे तजत न श्यामता, विष शिव कंठ बसाय ॥ ४९० ॥

दुष्ट पुरुष ऊंची जगह को पाकर भी दुष्टता नहीं छोड़ता । जैसे जहर, महादेव के गले में वास करके भी कालापन नहीं छोड़ता ॥ ४९० ॥

बिन उद्यम मसलत किये, कारज सिद्ध न ठाय ।
रोग न जावत औषधी, जानै जाइ जो खाय ॥ ४९१ ॥

बिना उद्योग के कार्य ठीक तौर से सिद्ध नहीं होता । बीमारी दवाई के जानने से नहीं जाती, तब जाती है जब दवाई को खाया जाय ॥ ४९१ ॥

नृप अनीतिके दोष ते, चूके मंत्र प्रयोग ।
करै कुपथ जा पुरुष को, उपजै क्यों नहिं रोग ॥ ४९२ ॥

राजा अन्याय के दोष से मन्त्र के प्रयोग को चूक जाता है । जो पुरुष बद परहेजी करे उसे रोग क्यों न पैदा होजाय ॥ ४९२ ॥

कहा करै आगम नियम, जो मूरख समझै न ।
दरपन को दोष न कछू, अंध वदन देखै न ॥ ४९३ ॥

यदि मूर्ख न समझे जो वेद और शास्त्र उसका क्या करें । शीशे का कुछ दोष नहीं यदि अन्धा अपना मुख उस में न देखे ॥ ४९३ ॥

दया दुष्ट के चित में, कबहूं उपजत नाहिं ।
हिंसा छोडै सिंह यह, क्यों आवै मन माहिं ॥ ४९४ ॥

दुष्ट पुरुष के हृदय में दया कभी नहीं पैदा होती । यह बात मन में कैसे समाये कि शेर हिंसा छोड़ देता है ॥ ४९४ ॥

प्रीति छुटेहू सजन के, मन ते हेत छुटै न ।
कमल नालको तोरिये, तदपि सूत टूटै न ॥ ४९५ ॥

प्रीति छूट जाने पर भी अच्छे पुरुष के मन से हित नहीं छूटता । कमल की डंडी को तोड़िये फिर भी उसका धागा नहीं टूटता ॥ ४९५ ॥

सज्जन के प्रिय बचन ते, गातनि ताप मिटाय ।

जैसे चंदन लेप ते, ताप जु तन को जाय ॥ ४९६ ॥

भले पुरुष के प्यारे बचन से शरीर का दुःख मिट जाता है। जैसे चन्दन के लेप से शरीर की गर्मी चली जाती है ॥ ४९६ ॥

सज्जन बचन दुर्जन बचन, अन्तर बहुत लखाय।
वे सब को नीके लगैं, वे काहू न सुहाय ॥ ४९७ ॥

सज्जन और दुष्ट पुरुष के वचनों में बड़ा भेद दीखता है। वे (सज्जन के वचन) तो सबको अच्छे लगते हैं और दूसरे किसी को अच्छे नहीं लगते ॥ ४९७ ॥

धन अरु गेंद जु खेल को, दोऊ एक सुभाय।
कर में आवत छिनक में, छिन में करते जाय ॥ ४९८ ।

दौलत और गेंद के खेलका, दोनों का एक ही तरीका है। क्षण में हाथ में आजाती है और क्षण में हाथ से चली जाती है ॥ ४९८ ॥

प्रभु को चिन्ता सबन की, आपु न करिये नाहिं।
जनम अगाऊ भरत है, दूध मात थन मांहिं ॥ ४९९ ॥

परमात्मा को सबकी चिन्ता है, आप चिन्ता नहीं करनी चाहिये। जन्म होने से पहले ही माता के स्तनों में परमात्मा दूध भर देता है ॥ ४९९ ॥

धन अरु यौवन का गरब, कबहू करिये नाहिं।
देखत ही मिट जात हैं, ज्यों बादर की छांहिं ॥ ५०० ॥

दौलत और जवानी का अभिमान कभी न करो। देखते २ ही बादल की छाया की तरह यह मिट जाती हैं ॥ ५०० ॥

नृपति चोर जल अनल ते, धनि को भय उपजाय।
जल थल नभ में मांस का, झख केहरि खग खाय ॥५०१॥

धनवान् आदमी को राजा, चोर, जल और आग से भय पैदा होता है। जैसे मांस को जल में मगर, थल में शेर और आकाश में पक्षी खाजाते हैं ५०१

बडे बडे को विपति ते, निहचै लेत उबारि।
ज्यों हाथी को कीच ते, हाथी लेत निकारि ॥ ५०२ ॥

निश्चय से बड़े आदमी बड़े आदमियो को मुसीबत से उबार लेते हैं। जैसे कीचड़ से हाथी को हाथी ही निकाल लता हैं ॥ ५०२ ॥

बडे कष्टहू जे बडे, करैं उचित ही काज।
स्यार निकट तजि खोज कै सिंह हनै गजराज ॥ ५०३ ॥

बहुत कष्ट पड़ने पर भी बड़े आदमी वही काम करते हैं जो उनके उचित हांता है। अपने पास ही गीदड़ को छोड़कर शेर ढूंढ कर भी हाथी को ही मारता है ॥ ५०२ ॥

जिहिं जेतौ उनमान तिहिं, तेतौ रिजक मिलाय।
कन कीडी कूकर टुकर, मनभर हाथी खाय ॥ ५०४ ॥

जिसका जितना प्रमाण होता है उसे उसके अनुसार ही भोजन मिल जाता है। च्यूंटी को दाने भर, कुत्ते को टुकड़ा और हाथी को मन भर खाने को मिल जाता है ॥ ५०४ ॥

बहुगुन श्रम तैं उच्च पद, तनक दोष तैं पात।
नीठ चडै गिरि पर शिला, डारत ही डरि जात ॥ ५०५ ॥

बहुत गुणों से और उद्यम से ऊंचा पद, आर थोड़े से दोष से गिरावट प्राप्त होती है। पहाड़ पर तो शिला मुश्किल से चढ़ती है परन्तु गिराते ही नीचे चली जाती है ॥ ५०५ ॥

छोटे अरि को साधिये, छोटो करि उपचार।
मरै न मूसा सिंह ते, मारैं ताहि मंजार ॥ ५०६ ॥

छोटे शत्रु को छोटा उपाय करके ही जीतना चाहिये। चूहा शेर से नहीं मरता, उसे बिल्ला ही मारता है ॥ ५०६ ॥

बडे बडे सों रिस करै, छोटे सों न रिसाय।
तरु कठोर तोरै पवन, कोमल तृण बच जाइ ॥ ५०७ ॥

बड़े आदमी बड़ों से ही क्रोध करते हैं, छोटों के प्रति क्रोध नहीं करते। बड़े वृक्षों को तो वायु तोड़ डालती है, परन्तु छोटे २ तृण (तिनके या घास) बच जाया करते हैं ॥ ५०७ ॥

सेवक सोई जानिये, रहै विपति में संग।
तन छाया ज्यों धूप में, रहै साथ इक रंग॥ ५०८॥

सच्चा सेवक उसी को जानो जो मुसीबत में भी साथ रहे। जैसे शरीरकी छाया धूप में भी विना परिवर्तन के सदा साथ रहती है॥ ५०८॥

बुरौ तउ लागत भलौ, भली ठौर पर लीन।
तिय नैननि नीकौ लगै, काजर जदपि मलीन॥ ५०९॥

अच्छी जगह पर लगा हुवा बुरा भी अच्छा मालूम देता है। काजल यद्यपि मैला है परन्तु स्त्री की आंखों में लगा हुवा भला लगता है॥ ५०९॥

जोरावरहू को कियौ, विधिवस करन इलाज।
दीप तमहि अंकुश गजहि, जलनिधि तरनि जहाज॥५१०॥

बलवान् को भी वश में करने के लिये विधाता ने उपाय कर दिये हैं। अन्धेरे के लिये दीया, हाथी के लिये अंकुश और समुद्र के लिये नौका और जहाज॥ ५१०॥

दुष्ट रहे जा ठौर पर, ताको करै बिगार।
आगि जहां ही राखिये, जारि करै तिहिं छार॥ ५११॥

दुष्ट मनुष्य जिस जगह पर रहता है वहां पर बिगाड़ ही करता है। आग को जहां रखिये सब कुछ जला कर उसे राख कर देती है॥ ५११॥

विना तेज के पुरुष की, अवसि अवज्ञा होय।
आगि बुझे ज्यों राख को, आनि छुवे सब कोय॥ ५१२॥

जो मनुष्य तेज से हीन है उसका अवश्य निरादर होता है। जैसे आग बुझने पर राख को सब कोई आकर छू लेता है॥ ५१२॥

पाय प्रकृति वस कीजिये, करि बुधि बचन विवेक।
लष्ट पुष्ट सों एक को, यष्ट मुष्ट सों एक॥ ५१३॥

बुद्धि से बचनों को सोच विचार कर और स्वभाव को जानकर दूसरे को वश में करना चाहिये। एक मोटे लठ से और दूसरे को छड़ी या मुक्के से (वश में किया जाता है)॥ ५१३॥

नेह करति तिय नीच सों, धन किरपन घर मांहि।
बरसै मेंह पहार पै, कै ऊसर बरसाहिं॥ ५१४॥

स्त्री हमेशा नीच मनुष्य से ही प्यार करती है, और दौलत सूम (गूंजसे) आदमियों के घर में ही जाती है। बारिश या तो पहाड़ पर बरसती है या ऊसर जमीन पर (वहां नहीं बरसती जहां पर बरसना चाहिये) ॥५१४॥

जहां रहै गुनवन्त नर, ताकी शोभा होत।
जहां धरै दीपक तहां, निहचै करै उदोत॥ ५१५॥

जहां गुणवान् मनुष्य रहता है उस स्थान की शोभा होती है। दीया जहां भी धरा जाता है वहां निश्चय से प्रकाश करता है॥ ५१५॥

खाली तज पूरन पुरुष, जिहिं सब आदर देत।
रीतौ कुंवां उसारिये, ऐंच भरयो घट लेत॥ ५१६॥

जिसे सब आदर देते हैं उस पूर्ण (मुकम्मल) पुरुष को ग्रहण करो, खाली (गुण हीन) आदमी को छोड़ दो। खाली कूंए को छोड़कर मनुष्य (पानी वाले कुंए से) भरा हुवा घड़ा खैंच सकता है॥ ५१६॥

सब आसान उपाय तैं, तुरत फुरत फल देत।
मथि अरुनी तरु काठ ज्यों, आगि प्रकट करि लेत॥५१७॥

उपायों से सब काम सहल होजाते हैं और शीघ्र ही फल दे देते हैं। जैसे कोई किसी वृक्ष की लकड़ी से अरणी को रगड़कर आग प्रगट कर लेता है॥ ५१७॥

जाकी प्रापति होय सो, मिलै आप तैं आय।
पाले पोषे खग बचन, देहै कहा कमाय॥ ५१८॥

जिसकी प्राप्ति होनी होती है वह स्वयं आकर मिल जाता है। पाले पोसे हुवे पक्षियों के वचन क्या कुछ कमा कर दे देते हैं? (क्योंकि उन से कुछ प्राप्ति ही नहीं होनी होती) ॥ ५१८॥

खल सज्जन सूचीन के, भाग दुहू सम भाय।
निगुन प्रकाशै छिद्र को, सगुन सु ढांपत जाय॥ ५१९॥

दुष्ट और सज्जन सुई के दो हिस्सों (नोकों) की तरह होते हैं। निर्गुण अर्थात् दुष्ट तो दोष को प्रकाशित कर देते हैं और गुणवान् दूसरों के दोष को ढांप देते हैं। सुई की तरफ जब अर्थ करेंगे तो यह होंगे, बिना धागे वाला हिस्सा छेद को खोल देता है और धागे वाला हिस्सा छेद को ढांप देता है५१९

तुला सुई की तुल्यता, रीति सजन की दीठि।
गुरुवे दिस को जाति है, हरुवे को दै पीठि ॥ ५२० ॥

तराजू की सुई और सज्जन की रीति में समानता देखी है हलके की (निर्गुण की) तरफ पीठ देकर (तराजू की सूई) भारी (गुणवान्) पलड़े की तरफ जाती है ॥ ५२० ॥

भले बुरे सों एक सी, मूढनि के परतीति।
गुंजा सम तोलत कनक, तुला पला की रीति ॥ ५२१ ॥

मूर्ख मनुष्य अच्छे और बुरे से एक ही तरह का विश्वास या बर्ताव करते हैं। तराजू के पलड़े की यह रीति है कि रत्ती (गुंजा) के बराबर ही सोने (कनक) को तोलता है ॥ ५२१ ॥

जिहिंदिस भय तिहिं दिस कबहुं, नां जाइए करि चोज।
गज तिहिं मग पग ना धरै, जहां सिंह को खोज ॥ ५२२ ॥

जिस दिशा में भय हो उस दिशा में कभी अभिमान पूर्वक न जाओ। हाथी उस रास्ते पर पैर नहीं धरता जहां शेर का पता चल जाता है॥५२२॥

सिद्धि होत कारज सबै, जाके जिय विश्वास।
पूजत चाकी को हथा, तिय जिय पूरै आस ॥ ५२३ ॥

जिस के दिल में विश्वास है उस के सब काम पूरे होते हैं। स्त्रियों से पूजा हुवा चक्की का हत्था उनके दिलकी आशा को पूरा कर देता है ॥५२३॥

बहुत द्रव्य संचै जहां, चोर राज भय होय।
कांसे ऊपर बीजुरी, परति कहै सब कोय ॥ ५२४ ॥

जहां बहुत धन इकट्ठा होजाता हैं वहां चोर और राजा का भय होता है सब कोई कहते हैं कि कांसी के ऊपर बिजली जरूर पड़ती है (चाहे कांसी

कहीं पर भी हो) ॥ ५२४ ॥

जानि बूझि अजगुत करै, तासों कहा बसाय।
जागत ही सोवत रहै, तिहिं को सकै जगाय ॥ ५२५ ॥

जान बूझकर जो असङ्गत (बेमेल) काम करे उस से क्या बस चल सकता है। जागता हुवा भी यदि कोई सोया रहे, तो उसे कौन जगा सकता है ॥ ५२५ ॥

जहँ तहँ सज्जन नहिं मिलैं, गुन गरवे जग माहिं।
जोति भरे पानिय भरे, प्रति गज मुक्ता नाहिं ॥ ५२६ ॥

गुणों के कारण महान् सज्जन पुरुष संसार में जहां तहां नहीं मिलते। चमक वाले और पानी से भरे मोती प्रत्येक हाथी में नहीं होते ॥ ५२६ ॥

विद्या विन न विराजहीं, यदपि सरूप कुलीन।
ज्यों शोभा पावे नहीं, टेसू वास विहीन ॥ ५२७ ॥

अच्छे रूप और कुल वाला भी क्यों न हो विद्या के विना मनुष्य शोभायमान नहीं होता। जैसे टेसू का फूल विना सुगन्ध के शोभा को नहीं पाता ॥ ५२७ ॥

एकहि भले सुपुत्र तैं, सब कुल भलौ कहाय।
सरल सुवासित वृक्ष ते, ज्यों बन सकल बसाय ॥ ५२८ ॥

एक ही अच्छे पुत्र से सारा कुल अच्छा कहलाता है। जैसे सीधे और खुशबूदार वृक्ष से सारा बन सुगन्धित होजाता है ॥ ५२८ ॥

गुरुमुख पढ्यो न कहतु है, पोथी अर्थ विचारि।
सो शोभा पावै नहीं, जार गर्भयुत नारि ॥ ५२९ ॥

पुस्तक का अर्थ विचार कर, गुरुमुख से न पढ़ा हुआ मनुष्य कुछ नहीं कह सकता। (जो कहता है) उसकी यार के द्वारा किये गये गर्भ से युक्त स्त्री की तरह शोभा नहीं होती ॥ ५२९ ॥

जाको बुधिबल होत है, ताहि न रिपु को त्रास।
घन बूंदैं कह करि सकैं, शिर पर छतना जास ॥ ५३० ॥

जिसके पास बुद्धि का बल है उसे शत्रु का डर नहीं होता । जिसके सिर छाता है बादल की बूंदें उसका क्या कर सकती हैं ॥ ५३० ॥

क्षमा खड्ग लीने रहै, खल को कहा बसाय ।
अगिन परी तृण रहतु थल, आपहिते बुझिजाय ॥ ५३१ ॥

जो क्षमा रूपी तलवार लिये रहते हैं उनपर दुष्ट का क्या बस चल सकता है । तृण (तिनका से) हीन जगह पर पड़ी हुई आग आप ही बुझ जाती है ॥ ५३१ ॥

एकै थल विश्राम को, सो तासों छुट जाय ।
ज्यों पंछी सुजहाज को, उड़ि उड़ि तहाँ बसाय ॥ ५३२ ॥

आराम के लिये एक ही स्थान होता है, यदि वह किसी से छूट भी जाय, तो भी वह वहीं पर फिर आजाता है । जैसे पक्षी जहाज पर बार २ उड़कर भी वहीं आकर बस जाता है ।। ५३२ ॥

जिहिं जैसा अपराध, तिंहिं तैसो दंड बखानि ।
थाप ककरिया चोर को, धन चोरहि जियहानि ॥ ५३३ ॥

जिसका जैसा अपराध है उसका वैसा ही दंड (सजा) बयान किया गया है । ककड़ी के चोर को थप्पड़ और धनके चोर को फांसी (या कैद) दी जाती है ॥ ५३३ ॥

ओछे नर के पेट में, रहे न मोटी बात ।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात ॥ ५३४ ॥

कमीने आदमी के के पेट में बड़ी बात कभी नहीं ठहरती । आध सेर के बर्तन में एक सेर कैसे समा सकता है ? ॥ ५३४ ॥

चलिये पैंडे सांच के, साईं सांच सुहाय ।
सांचो जरै न आग ते, झूठों ही जरि जाय ॥ ५३५ ॥

सचाई के रास्ते से चलना चाहिये, परमात्मा को सचाई ही अच्छी लगती है । सच्चा मनुष्य आग से भी नहीं जलता, झूठा ही जल जाता है५३५

झूठे मंत्र जो लों रहै, करें जु मिलि जन दोय ।

गई छकानी बात तब, जानि जात सब कोय॥ ५३६॥

झूठी साजिश तभी तक रहती है जबतक उसे दो आदमी मिलकर करें। जब बात छः कानों मे अर्थात् तीसरे आदमी पर चली जाय तो उस बात को सब जान जाते हैं॥ ५३६॥

गूढ़ मंत्र गरुवे बिना, कोऊ राखि सकै न।
धातु पात्र बिन हेम के, बाघिन दूध रहै न॥ ५३७॥

गूढ रहस्य को गम्भीर मनुष्य के सिवाय कोई नहीं रख सकता। बिना सोने के किसी भी धातु के बर्तन में बाघिनी का दूध नहीं रह सकता॥ ५३७॥

बहुत जु बीते तनक धन, सोचहि सजन करै न।
मनन हानि सुनि ऊपजी, थोरौ चित्त धरै न॥ ५३८॥

बड़े आदमी बहुत नष्ट होने पर थोड़े से धनका सोच नहीं करते। पैदा हुवे मनों के नुकसान को सुनकर (कोई व्यापारी) थोड़े नुकसान को दिल में नहीं रखता॥ ५३८॥

भिरत भार सब ते उतरि, धीरहि पर ठहरात।
नीर निचानहि पाइये, ज्यों बीतै बरसात॥ ५३९॥

लडाई का भार सबके ऊपर से उतरकर सबर वाले मनुष्य पर ही आकर ठहरता है। जैसे बरसात बीत जाने पर पानी को हमेशा नीचे ही पाओगे५३९

शील करम कुल श्रुत चतुर, पुरुष परिच्छा जान।
ताड़न छेदन कसनपन, इन ते कनक पिछान॥ ५४०॥

स्वभाव, काम, खान्दान और स्वाध्याय से योग्य पुरुष की परीक्षा करनी चाहिये। सोने को पीटने, तोड़ने और कसौटी पर रगड़े जाने से ही उसकी पहचान करो॥ ५४०॥

जोपै जैसे होय तिहिं, हित सों मिलि है आय।
गिरी छुहारौ चोर पै, साहहिं देत मिलाय॥ ५४१॥

जिसने जिसके पास जाना होता है वह उसे हित से आकर मिल जाता है। चोर पर छुहारा गिरकर साह से मिला देता है॥ ५४१॥

कबहूं रन विमुखो भयो, तउ फिर लरै सिपाह।
कहा भयो काहू समै, भाग्यो तऊ बराह ॥ ५४२ ॥

यदि कभी लड़ाई से विमुख भी होजाय तो सिपाही फिर भी लड़ाई करता ही है। क्या हुवा यदि किसी समय बाराहावतार युद्ध से भाग गया हो ॥ ५४२ ॥

कबहूं प्रीति न जोरिये, जोरि तोरिये नांहि।
ज्यों तोरे जोरे बहुरि, गांठ परति गुन मांहि ॥ ५४३ ॥

कभी भी पहले तो प्रीति करनी ही नहीं चाहिये, यदि करली तो उसे तोड़ना नहीं चाहिये। जैसे बार बार तोड़ने और जोड़ने से धागे में गांठें पड़ जाती हैं ॥ ५४३ ॥

अंतर तनक न राखिये, जहां प्रीति व्यवहार।
उर सों उर लागे न तहं, जहां रहत है हार ॥ ५४४ ॥

जहां प्रेम का वर्ताव होवे वहां थोड़ा सा भी आपस में भेद नहीं रखना चाहिये। वहां छाती से छाती नहीं मिलती जहां बीच में हार रहता है (थोड़ा सा फ़र्क रखने पर ही प्रेमीजन अच्छी तरहसे नहीं मिल सकते हैं) ५४४

निरखत पलक न पारिये, सज्जन मुख की ओर।
उदय अस्त लौं एक टक, चितवतु चन्द चकोर ॥ ५४५ ॥

अच्छे आदमी की तरफ देखते हुवे पलक नहीं मारने चाहियें। चकोर, उदय होने से लेकर अस्त होजाने तक एकटक चन्द्रमा को निहारता रहता है ॥ ५४५ ॥

सेवक साहिब के बढै, बढै बड़ाइ ओज।
जेतो गहरो जल बढै, तेतो बढै सरोज ॥ ५४६ ॥

मालिक के बढ़ने पर नौकर भी अपना तेज बढ़ाकर वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। जितना ही गहरा पानी बढ़ेगा उतना ही कमल भी बढ़ता है ५४६

ओछे नर के चित्त में, प्रेम न पूर्‍यो जाय।
जैसे सागर को सलिल, गागर में न समाय ॥ ५४७ ॥

नीच मनुष्य के हृदय में प्रेम नहीं भरा जासकता। जैसे समुद्र का पीना गागर में नहीं समा सकता ॥ ५४७ ॥

जे न होंय दृढ चित्त के, तहां न रहै सटेक।
ज्यों काचे घट में सलिल, नहिं ठहरतु छिन एक ॥५४८॥

जो दिल के मजबूत नहीं होते उनके पास दृढ़प्रतिज्ञ आदमी नहीं रहते। जैसे कच्चे घड़े में पानी एक क्षणभर भी नहीं ठहरता ॥ ५४८ ॥

रस पोषै बिनहीं रसिक, रस उपजावत संत।
बिन बरसे सरसे रहैं, जैसे विटप वसंत ॥ ५४९ ॥

विशेष तौर पर रसको बढ़ाये बिना रसिक और सन्त आदमी रस को पैदा कर देते हैं। जैसे बसन्त ऋतु में बिना बारिश के भी वृक्ष फूले फले रहते हैं ॥ ५४९ ॥

मन भावन के मिलन को, सुख को नाहिं न छोर।
बोलि उठै नचि नचि उठै, मोर सुनत घन घोर ॥ ५५० ॥

मन को जो भाता है उसके मिलने पर सुख का पारावार नहीं रहता, (अथाह सुख प्राप्त होता है) मोर बादल के शब्द के सुनते ही बोल उठता है और बार २ नाच उठता हैं ॥ ५५० ॥

विरही जनके चित्त को, नाहिं रहतु बुधि बोध।
थर चर को बूझत फिरे, राघव सीता सोध ॥ ५५१ ॥

विरही मनुष्य के चित्त में कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। रघुपति राम, सीता को खोजते हुये, चलने और न चलने वाले सब पदार्थों से पूछते फिरते रहे५५१

जहां सजन तहँ प्रीति है, प्रीति तहां सुख ठौर।
जहां पुष्प तहँ बास है, जहां वास तहँ भौंर ॥ ५५२ ॥

जहां भला मनुष्य है वहीं प्रेम है और जहां प्रेम है वहीं सुख का स्थान है। जहां फूल है वहीं सुगन्ध है जहां सुगन्ध है वहीं भौंरा है ॥ ५५२ ॥

जो प्राणी परबस परयो, सो दुख सहत अपार।
यूथ बिछोहो गज सहै, बंधन अंकुश मार ॥ ५५३ ॥

जो जीव दूसरे के बस में पड़ गया वह बड़ा भारी दुःख उठाता है। अपने झुंड से अलग हुवा हाथी, बन्धन और अंकुश की मार को सहता है। (उसके साथी नहीं, क्योंकि वे स्वतन्त्र हैं॥ ५५३॥

गुणी होय श्रम कष्ट करि, लहै राज दरबार।
बेध बंध मुक्ता सहै, तब उरहार बिहार॥ ५५४॥

एक दफे मनुष्य गुणवान् होवे, वह परिश्रम और कष्ट करके राजदर्बार प्राप्त कर लेता है। मोती बींधे जाने और बांधे जाने को जब सहता है तब हृदय का हार होकर बिहार करता है॥ ५५४॥

मन प्रसन्न तन चैन जहँ, स्वेच्छाचार विचार।
संग मृगी मृग सुख सबै, बन बसि तृण आहार॥ ५५५॥

जहां मन प्रसन्न हो और शरीर में चैन हो वहीं पर इच्छानुकूल व्यवहार और विचार होसकता है। बन में बसकर तिनकों का भोजन करके भी हरिण हरिनी के साथ रहकर सब सुखों का अनुभव करता हैं॥ ५५५॥

जानहार जाइ न बसत, तदपि जतन विवहार।
देखो सब के देखिये, काहे द्वार किवार॥ ५५६॥

जाने वाली चीज जाती है, कभी पास में नहीं रहती, फिर भी उसके लिये कोशिश और उपाय होता है। किस लिये सब के घरों में दरवाजे देखे जाते हैं? (इस लिये कि यह चोर और उपद्रवी लोगों को रोकने की कोशिश है, यद्यपि चोरी और खून हो ही जाते हैं।) ॥ ५५६॥

है पांसे के दाव पर, कहँ जीत कहँ हारि।
सारि उठै यो चौकसी, छकपौ उठै न सारि॥ ५५७॥

पासे के दांव पर ही कहीं जीत है और कहीं हार। कहीं तो चार पैंकों से सारे गोंटे उठ जाते हैं परन्तु छः दानों से सारे गोंटे नहीं उठते॥ ५५७॥

सब को व्याकुल करति है, एक जठर की आगि।
परै किलकिला जलधिमाधि, जल जलचर डर त्यागि ५५८

पेट की आग सबको व्याकुल करती है। जल में चरने वाले जन्तु जलका

डर छोड़कर किलकिला (शब्द करते हुए) समुद्र के बीच में जा पड़ते हैं ।५५८।

उदर भरन के कारने, प्राणी करत इलाज।
नांचै बांचै रन भिरै, रांचै काज अकाज ॥ ५५९ ॥

पेट भरने के लिये ही जीव उपाय करते हैं। मनुष्य नाचते हैं, पुस्तकें पढ़ते हैं युद्ध में लड़ते हैं, गर्ज कि कर्म अकर्म (सब तरह के काम) करते हैं ॥ ५५९ ॥

दुर भर उदर न दीन को, होत न तन सन्ताप।
तौ जन जनको को सहत, तरजन गरजन ताप ॥ ५६० ॥

गरीब को यदि पेट भरना दूभर न होता तो शरीर को कष्ट न होता। (यदि पेट का भरना मुश्किल न होता) तो एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की झाड़ झिड़की (तर्जन गर्जन) क्यों सहता ॥ ५६० ॥

उदर धरन नर ते भलो, रहि उदर ते हीन ॥
कबहूं नाहिं न होत है, जन जन के आधीन ॥ ५६१ ॥

पेट को धारण करने वाले मनुष्य से पेट से विहीन मनुष्य कहीं अच्छा है। इस तरह से मनुष्य, मनुष्य के आधीन कभी नहीं रहता ॥ ५६१ ॥

करी उदर दुर भरन भय, हर अरधंगा दार।
जौन होय तौ क्यों रहै, अब लों तनय कुमार ॥ ५६२ ॥

पेट को भरने के भय से ही शिव ने अपनी स्त्री को अर्धाङ्गिना किया। यदि ऐसा न होता तो उनके पुत्र (कार्तिकेय) अबतक कुमार (क्वारे = अविवाहित) क्यों रहे ॥ ५६२ ॥

भरतु पेट नट निरत कैं, डरतु न करतु उपाय।
धरतु बरत पर पांय अरु, परतु बरत लपटाय ॥ ५६३ ॥

बाजीगर निरत होकर अपना पेट भरते हैं, डरते नहीं और उपाय करते हैं, कभी रस्सी पर पांव धरते हैं और कभी रस्सी से लिपटकर गिर पड़ते हैं ५६३

एक एक को शत्रु है, जो जाते बलवन्त।
जलहि अनल अनलहि पवन, सरप जु पवन भखंत ५६४

जो जिससे बलवान् है वह उसका दुश्मन है। जल को आग, आग को वायु और वायु को सांप खा जाते हैं (क्योंकि ये एक दूसरे से बलवान् हैं) ५६४

एक एक ते देखिये, अधिक अधिक बलवंत।
शेष धराधर गिर धरै, गिर धरि हरि भगवन्त॥ ५६५॥

देखिये एक से एक अधिक बलवान् इस संसार में हैं। शेषनाग ने पृथ्वी को, पृथ्वी ने पहाड़ को और पहाड़ ने भगवान् हरि को धारण किया हुवा है॥ ५६५॥

देत न प्रभु कछु बिन दिये, दिये देत यह बात।
लै तंदुल धन द्विजहिं सुनि, त्रिपत किये भखिपात॥ ५६६॥

बिना कुछ दिये परमात्मा भी नहीं दिया करते, देने से ही देते हैं, ऐसी बात है। ब्राह्मण (द्विजहि = सुदामा) को आया हुवा सुनकर उससे चावल लेकर, और विदुर का सागपात खाकर भगवान् ने उसे धन से तृप्त (सन्तुष्ट) किया॥५६९॥

यथा शक्ति ही दै सकै, जो कुछ जाके पास।
ब्राह्मण कण चावर दिए, श्रीपति धन आवास॥ ५६७॥

अपनी हैसियत के मुताबिक ही जो कुछ जिसके पास है वह दे सकता है। ब्राह्मण ने चावलों के दाने दिये और लक्ष्मीपति (श्रीकृष्ण) ने धन और रहने के लिये मकान दिया॥ ५६७॥

जोरावर के होत है, सबके सिर पर राह।
हरि रुक्मणि हरि लैगयो, देखति रही सिपाह॥ ५६८॥

बलवान् आदमी का सब के सिरों पर रास्ता अर्थात् राज्य होता है। श्रीकृष्ण, रुक्मिणी को हर लेगये परन्तु सारी सेना देखती रह गई॥ ५६८॥

अगम पंथ है प्रेम को, जहँ ठकुराई नाहिं।
गोपिन के पीछे फिरे, त्रिभुवनपति बन माहिं॥ ५६९॥

प्रेम का मार्ग बड़ा विकट (कठिन) है, जहां किसी तरह की हकूमत नहीं है। तीनों लोकों के मालिक श्रीकृष्ण (इसी प्रेम के कारण) गोपियों

के पीछे २ बनों में फिरते रहे ॥ ५६९ ॥

वचन रचन कापुरुष के, कहे न छिन ठहराय।
ज्यों कर पद मुख कच्छप के, निकसि निकसि दुरजाय५७०

डरपोक आदमी के पास बचनों की रचना मात्र ही होती है अर्थात् वे केवल बातूनी ही होते हैं) अपने कहे पर क्षण भर भी कायम नहीं रहते । जैसे कछुवे के हाथ पैर और मुंह निकल २ कर फिर छिप जाते हैं ॥५७०॥

कबहूँ झूठी बात को, जो करिहै पछपात।
झूठे संग झूठा परत, फिर पीछे पछतात ॥ ५७१ ॥

कभी भी जो कोई झूठी बात का पक्षपात (तरफदारी) करता है वह झूठे मनुष्य के साथ झूठा बनकर पीछे पछताता है ॥ ५७१ ॥

कुल कुपुत्र किहिं काम को, तिहिं सों शोभा नाहिं।
ज्यों बकरी के कंठ थन, दूध न जल तिहिं माहिं ॥५७२॥

खान्दान में निकम्मा पुत्र किस काम का, उससे कुलकी शोभा नहीं । (वह ऐसा है) जैसे बकरी के गले के थन, उन में न दूध होता है और न पानी ॥ ५७२ ॥

बिगरन वाली बात को, कहौ सुधारै कौन।
डारे पय औटाय कै, मिसरी भौरे लौन ॥ ५७३ ॥

जिस बात को बिगड़ना होता है उसे कहो कौन सुधार सकता है । दूध गर्म कर के मिश्री की जगह नमक के ढेले कोई डालदे (तो कहो क्या हो सकता है ?) ॥ ५७३ ॥

काहू को हँसिये नहीं, हँसी कलह को मूल।
हांसी ही ते है भयो, कुल कौरव निरमूल ॥ ५७५ ॥

किसी पर हंसी न करिये, हंसी लड़ाई की जड़ है । हंसी से ही कौरवों का कुल निर्मूल (जड़ से रहित) होगया ॥ ५७४ ॥

दुरजन गहत न सजनता, जतन करो किन कोइ।
जौपै जौ को रोपिए, कबहूं शालि न होइ ॥ ५७५ ॥

दुष्ट मनुष्य भलाई को कभी ग्रहण नहीं करता चाहे कोई कितना परिश्रम करे। यदि जौ के बीज बोवोगे तो चावल कभी पैदा नहीं होंगे ॥ ५७५ ॥

जग परतीति बढाइये, रहिये सांचे होय ।
झूंठे नर की सांचियं, साखि न माने कोय ॥ ५७६ ॥

संसार में विश्वास को बढ़ाओ और सच्चे होकर रहो। झूठे आदमी की, उसके सच्चा होने पर भी गवाही (साखि) कोई नहीं मानता ॥ ५७६ ॥

बडे बडाई के जतन, गहे विरद की लाज ।
भए चतुर्भुज चोर ते, नृप कन्या के काज ॥ ५७७ ॥

बड़े मनुष्य अपनी बड़ाई की खातिर विरद (विशेष चिन्हों) की लाज रखते हैं। विष्णु एक चोर से राजा की लड़की की खातिर चार भुजाओं वाले हो गये ॥ ५७७ ॥

ह्वै अयुक्त पै युक्त है, करिये वहै प्रमान ।
ब्राह्मण सों गुरु जननि सों हार होत बखान ॥ ५७८ ॥

ठीक होने पर भी कोई यदि किसी समय अयुक्त जान पड़े तो उसे ठीक समझकर करलेना चाहिये। जैसे ब्राह्मणों और गुरुजनों से हार होने पर भी मनुष्य की प्रशंसा ही होती है ॥ ५७८ ॥

जामैं हित सो कीजिये, कोहू कहै हजार ।
छल बल साधि विजयकरी, पारथ भारथ वार ॥ ५७९ ॥

जिसमें भलाई हो वही काम करिये चाहे हजार मना करने वाले हों। महाभारत में जैसे अर्जुन (पारथ) ने दगे से जोर से सिद्ध करके कौरवों पर विजय प्राप्त की ॥ ५७९ ॥

सुनिये सब ही की कही, करिये सहित विचार ।
सर्व लोक राजी रहे, सो कीजै उपचार ॥ ५८० ॥

सबका कहा हुवा सुन लीजिये और फिर विचार पूर्वक काम करिये। वही उपाय अच्छा होता है जिस में सब मनुष्य प्रसन्न रहें ॥ ५८० ॥

प्रापति के दिन होत है, प्रापति बारबारं ।

लाभ होतु व्यापार में आन मन्त्र अधिकार ॥ ५८१ ॥

जिस दिन प्राप्ति होना होती है उस दिन बार २ प्राप्ति होती है। व्यापार में कभी २ सलाह और अधिकार दूसरे का होता है परन्तु लाभ अपने को हो जाता है ॥ ५८१ ॥

अपरापति के दिनन में, खरच होतु अविचार।
घर आवतु है पाहुनो, बिन जन लाभ लगार ॥ ५८२ ॥

जिन दिनो कुछ नहीं मिलना होता उन दिनों बिना बिचारे ही खर्च हुवा चला जाता है। उस दिन बिना प्रयोजन, लाभ और मतलब, घर में मेहमान आ जाता है ॥ ५८२ ॥

दीन धनी आधीन है, शीश नवावत वाहि।
मान भंग की भूमि यह, पेट दिखावत ताहि ॥ ५८३ ॥

गरीब सदा धनवान् के आधीन होता है और उसे सिर झुकाता है। यह (गरीबी) बेइज्जती का स्थान (घर) है और उसे (धनवान् को) हमेशा पेट दिखाता है ॥ ५८३ ॥

रूखे सूखे उदर को. भरी होत संतुष्ट।
ए मन लाख करोर के, पाए तुष्ट न दुष्ट ॥ ५८४ ॥

रूखे सूखे भोजन से पेट को भरकर सन्तुष्ट होवो। यह दुष्ट मन तो लाख और करोड़ पाने पर भी सन्तुष्ट नहीं होता ॥ ५८४ ॥

एक एक के काज को, रचि राखै जगदीश।
जैसे भरिये पेट को, निहुरै सब को शीश ॥ ५८५ ॥

प्रत्येक मनुष्य के काम को परमात्मा बनाये रखता है। जैसे पेट को भरने के लिये सब के आगे सिर झुक जाता है ॥ ५८५ ॥

भली किये ह्वै हैं बुरी, देखो विधि विपरीति।
भक्ति करी द्विज जमदगनि, अर्जुन करी अनीति ॥५८६॥

देखिये जब भाग्य ही उलटे हों तो भला करने पर भी बुराई ही होती है। जमदग्नी ब्राह्मण ने की तो भक्ति, परन्तु अर्जुन ने उस के साथ अन्याय किया ॥ ५८६ ॥

कहे बचन पलटैं नहीं, जे सत पुरुष सधीर।
कहत सबै हरिचन्द नृप, भरयो नीच घर नीर॥ ५८७॥

जो पुरुष सच्चे और धैर्य वाले होते हैं व कहे हुवे वचनों से नहीं फिरते, जैसे सब कोई राजा हरिश्चन्द्र को कहते हैं, जिसने नीच के घर में भी पानी भरा॥ ५८७॥

मति फिर जाय विपत्ति में, राव रंक इक रीत।
हेम हिरन पाछे गये राम गंवाई सीत॥ ५८८॥

राजा और रंक, (गरीब) सबकी मुसीबत के समय बुद्धि उलटी हो जाती है। रामचन्द्र सोने के हरिण के पीछे २ गये और सीता को गंवा बैठे॥ ५८८॥

जानहार सो जाय अरु, होनहार ह्वै आय।
रावण ते लंका गई, बसे विभीषण पाय॥ ५८९॥

जाने वाली चीज चली जाती है और होनहार अवश्य होकर रहती है। रावण से तो लंका चली गई और विभीषण उसे पाकर उसमें निवास करने लगे॥ ५८९॥

अनउद्यम सुख पाइये, जो पूरबकृत होय।
दुख को उद्यम को करतु, पावत है नर सोय॥ ५९०॥

बिना परिश्रम ही सुख को पाइये यदि पहले कुछ (पुण्य) किया हुवा है। देखो दुःख के लिये कौन परिश्रम करता है, परन्तु मनुष्य दुःख अवश्य पाता है॥ ५९०॥

प्यारी अनप्यारी लगै, समय पाय सब बात।
धूप सुहावे सीत में, सो ग्रीषम न सुहात॥ ५९१॥

समय पाकर प्यारी बात भी बुरी लगती है। सर्दी में तो धूप अच्छी लगती है, परन्तु वही, गर्मी में अच्छी नहीं लगती॥ ५९१॥

जन्मत ही पावे नहीं, भली बुरी कोउ बात।
बूझत बूझत पाइये, त्यों त्यों समझतु जात॥ ५९२॥

जन्मते ही कोई मनुष्य भली या बुरी बात को नहीं पा लेता। ज्यों २ ज्ञान होता जाता है, त्यों २ मनुष्य बातों को समझता जाता है ॥५९२॥

भलो ज्ञान अज्ञान नहिं, है अज्ञान नहिं ज्ञान।

भानु उयो तौ तम नहीं, है तम उयो न भान ॥ ५९३ ॥

जहां ज्ञान है वहां अज्ञान नहीं और जहां अज्ञान है वहां ज्ञान नहीं। सूर्य के उदय होने पर अन्धेरा नहीं रहता और जब अन्धेरा होता है तब सूर्य उदय नहीं होता ॥५९३॥

सत पुरुषनि सौं उतरि के, होत नीच अधिकार।

यह खटकत रवि से असित, तम को जगत प्रचार ॥५९४॥

अच्छे पुरुषों से हट कर नीच आदमी के पास गया हुवा अधिकार दिल को खटकता है, जैसे सूर्य की अपेक्षा काले अन्धेरे का संसार में फैलाव (सब के दिलों को खटकता है) ॥५९४॥

हरवी गरुव के हिये, ठहरति नाहीं बात।

तुंबी जल में दाबिये, ज्यों ऊपर ही आत ॥ ५९५ ॥

बड़े आदमी के पेट में छोटी बात नहीं ठहरती। जैसे तूबे को पानी में जितना दबाइये उतना ही वह ऊपर को आता है ॥५९५॥

पावत बहुत तलास ते, करते छूटी बात।

आंधी में टूटी गुडी, को जानै कित जात ॥ ५९६ ॥

हाथ से निकली हुई बात को मनुष्य बहुत तलाश करने पर पाता है। आंधी में टूटी हुई पतंग कौन जानता है किधर चली जाय ॥५९६॥

पिय के बिछुरे बिरह बस, मन न कहूँ ठहरात।

धरनि गिरतु बीचहि फिरत, पर्‌यो बघूरे पात ॥ ५९७ ॥

प्यारे के बिछड़ने से वियोग के कारण मन कहीं नहीं ठहरता। जैसे पत्ता, बघूले (कभी २ हवा की तेजी के कारण मट्टी का एक ऊंचा सा मीनार बन जाया करता है जो बड़े जोर से चक्कर लगता है उसे बघूरा कहते हैं) में पड़ा हुआ पृथ्वी पर गिरता है और कभी बीच में ही फिरता रहता है ५९७

होत अधिक गुण निबल पै, उपजत बैर निदान ।
मृग मृगमद चमरी चमर, लेत दुष्ट हत प्रान ॥५९८॥

यदि कमजोर में अधिक गुण हों तो लाचार बैर पैदा होजाता है। दुष्ट मनुष्य, हरिण और चामरी गौ को मारकर कस्तूरी और चंवर ले लेते हैं ॥५९८॥

आप तरै तारै अवर, काठ नाव चित चाव ।
बूडै बोरै अवर को, ज्यों पाथर की नाव ॥५९९॥

लकड़ी की नाव चित्त में चाहना कर के स्वयं तर जाती है और दूसरों को भी पार लगा देती है। परन्तु पत्थर की नाव स्वयं भी डूब जाती है और दूसरों को भी डुबा देती है ॥५९९॥

जूवा खेले होतु है, सुख संपति को नास ।
राज काज नल ते छुट्यो, पांडव किय बनवास ॥६००॥

जूआ खेलने से सुख और धन का नाश होता है। (इसी जूए के कारण) राजा नल का राज्य और काम छूटा, तथा पांडवों ने बनवास धारण किया ॥६००॥

सरस्वति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात ।
ज्यों खरचे त्यों त्यों बढ़े, बिन खरचे घटि जात ॥६०१॥

विद्या (सरस्वती) के भंडार की बड़ी अनोखी बात है। ज्यों २ इसे खर्चा जाय त्यों २ यह बढ़ती है और बिना खर्च किये घट जाती है ॥६०१॥

कह अनखोही बात पर, को न देखि अनखात ।
नकटी बूची इकनयनि, पान खाति मुसकात ॥६०२॥

कहो असंगत बात पर कौन देख कर नहीं चिढ़ता। (कैसा बुरा मालूम देता है) यदि नकटी, कनकटी, और एक आंख वाली स्त्री पान खाकर मुस्काये ॥६०२॥

देखा देखी करत सब, नाहिं न तत्त्व विचार ।
याकौ यह अनुमान है, भेड़ चाल संसार ॥६०३॥

एक दूसरे के देखा देखी ही सब काम करते हैं किसी को असलीयत का विचार नहीं होता। इसलिये यह कहा जाता है कि संसार भेड़ चाल के मानिंद है ॥६०३॥

काज बिगारतु और को, इक निज काज सुधारि।
कियो मंत्रि मिल राज नृप, सुरथहि दियो निकारि ॥६०४॥

अपने एक काम को सुधार कर मनुष्य दूसरे के काम को बिगाड़ देता है। मंत्री ने मिलने पर स्वयं राज्य किया और राजा सुरथ को राज्य से निकाल दिया ॥६०४॥

काज बिगारतु आपनौ, एक और के काज।
बलहि निवारत नैनकी, हानि सही कविराज ॥ ६०५ ॥

कोई मनुष्य औरों के काम के लिये अपने काम को बिगाड़ डालता है। जैसे कविराज शुक्राचार्य ने सेना को हटाते हुवे आंख की हानि का सहन किया ॥६०५॥

एक आपनो और को, साधत काज सतोल।
अंगद अपने राम को, कीनो सभा सबोल ॥ ६०६ ॥

एक (ऐसे हैं जो) अपने और दूसरे के काम को बड़ी सावधानी के साथ सिद्ध कर लेते हैं। अंगद ने (रावण की) सभा में अपनी वाणी की शक्ति से (सबोल) अपना और राम का कार्य किया ॥ ६०६ ॥

एक बिगारतु आपनो, और परायो काज।
रावन को अरु आपनो, किय घननाद अकाज ॥ ६०७ ॥

एक (ऐसे हैं जो) अपने और पराये काम को बिगाड़ डालते हैं। मेघनाद ने अपना और रावण का अकार्य किया अर्थात् काम बिगाड़ा ॥ ६०७ ॥

देखत को सुन्दर लगै, उर में कपट विषाद।
इन्द्रायन के फलन सम, भीतर कटुक सवाद ॥ ६०८ ॥

देखने को तो सुन्दर मालूम होते हैं परन्तु हृदय में कपट और ईर्ष्या होती है। वे इन्द्रायन के फल की तरह हैं जिनका भीतर से स्वाद कौड़ा

होता है (परन्तु देखने में सुन्दर होते हैं) ॥ ६०८ ॥

विरह पीर व्याकुल भए आयो पीतम गेह।
जैसे आवत भाग ते, आग लगे पर मेह ॥ ६०९ ॥

बिछोड़े के कारण व्याकुल होजाने पर प्यारा घर में आया, (यह ऐसे है) जैसे कहीं आग लगने पर भाग्यवश मेंह (बारिश) आगया हो ॥ ६०९ ॥

खरचत खात न जात धन, औसर किये अनेक।
जात पुण्य पूरन भये, अरु उपजे अविवेक ॥ ६१० ॥

अनेक समयों पर भी खर्च करने और खाने से धन नहीं चला जाता। धन नष्ट होता है पुण्यों के पूरा होजाने और नासमझी के पैदा होने पर ६१०

चलै जु पंथ पिपीलिका, समुद्र पार ह्वै जाय।
जो न चले तो गरुडहू पैंडहु चलै न पाय ॥ ६११ ॥

यदि चिऊंटी भी रास्ते पर चले तो समुद्र के पार होजाय। यदि (ठीक रास्ते पर) न चला जाय, तो गरुड़ भी (जो कि एक बहुत तेज उड़ने वाला पक्षी है) एक कदम न चलने पावे ॥ ६११ ॥

एक एक आखर पढे, जाने ग्रन्थ विचार।
पैंड पैंड हू चलत जो, पहुँचे कोस हजार ॥ ६१२ ॥

एक २ अक्षर पढ़ने से भी ग्रन्थ के सारे विचारों को मनुष्य जान जाता है। जो एक २ कदम चलता है वह हजार कोसों पर पहुंच जाता है ॥६१२॥

भले बुरे हू सों करत, उपकारी उपकार।
तरवर छाया करत है, नीच न ऊंच विचार ॥ ६१३ ॥

परोपकारी मनुष्य, अच्छे और बुरे सब ही मनुष्यों के साथ उपकार किया करते हैं। वृक्ष सबको समान भाव से छाया करते हैं उन्हें ऊंच नीच का कोई विचार नहीं हुआ करता ॥ ६१३ ॥

सजन करत उपकार को, वित माफिक जग मांहिं।
गहरे गहरी छांह तरु, बिरले बिरली छांहि ॥ ६१४ ॥

अच्छे आदमी संसार में अपनी शक्ति के मुआफिक ही उपकार करते हैं।

घने वृक्ष घनी छाया और विरले (छीदे) वृक्ष (जिनके पत्ते घने नहीं) विरली (छीदी) छाया ही करते हैं ॥ ६१४ ॥

बिन देखे जाने परै, देखै जहां निसान।
दीप धरै धन लाख पर, कोर ध्वजा फहरान ॥ ६१५ ॥

बिना देखे और जाने हुवे भी कोई बात निशान के जरिये देख ली जाती है। लाख रुपये पर दीया धरा जाता है और करोड़ पर झंडा फहराया जाता है। (किसी जमाने में लखपति अपने घर में घी का दिया जलाते थे और करोड़पति अपने मकान पर ध्वजा लगाते थे जिन्हें देखकर लोग समझ जाते थे कि अमुक के पास लाख और अमुक आदमी के पास करोड़ रुपया है)६१५

भले वंश को पुरुष सो, निहुरै बहु धन पाय।
नवै धनुष सदवंस को, जिहिं द्वै कोटि दिखाय ॥ ६१६ ॥

अच्छे वंश का आदमी बहुत धन पाकर भी सदा झुका ही करता है। जैसे अच्छे बांस का धनुष अपने दो कोने (कोटि) दिखाकर झुकता है ६१६

एक एक सों लगि रहै, अन्नोदक सम्बन्ध।
चोली दामन ज्यों रच्यो, जगत जंजीरा बन्ध ॥ ६१७ ॥

संसार में एक दूसरे का आपस में अन्न और जलका सम्बन्ध लगा हुवा है (अर्थात् सब प्राणी आपस में सम्बद्ध हैं) जैसे कुड़ते और निचले वस्त्र की रचना है। संसार एक ही जंजीर में बंधा हुवा है ॥ ६१७ ॥

नेगी दूर न होतु है, यह जानौ तहकीक।
मिटत न ज्यों क्यों हूं किये, ज्यों हाथन की लीक ॥६१८॥

यह निश्चय जानो कि नेगी (परस्पर सम्बन्ध रखने वाले) एक दूसरे से दूर नहीं होते। जैसे चाहे कुछ भी करो हाथों की लकीरें नहीं मिटतीं। (हाथ और लकीरों का नित्य सम्बन्ध है) ॥ ६१८ ॥

चिदानंद घट में बसै, बूझत कहां निवास।
ज्यों मृगमद मृगनाभि में, ढूंढत फिरत सुवास ॥ ६१९ ॥

चिदानन्द परमात्मा घट २ में बस रहा है, परन्तु लोग पूछते हैं कि

उसका वास कहां है ? (यह ठीक ऐसे है) जैसे मृग, जिसकी अपनी नाभि में करतूरी है परन्तु खुशबू को कहीं अन्यत्र ढूंढता फिरे ॥ ६१९ ॥

कै समसौं कै अधिक सों, लरिये करिये बाद।
हारे जीते होतु है, दोऊ भांति सवाद ॥ ६२० ॥

या तो अपने बराबर वाले से या अपने से अधिक जोर वाले से लड़िये और बहस करिये। हार जाने या जीत जाने पर दोनों तरह ही स्वाद आता है ॥ ६२० ॥

सज्जन सों रस पोखिये, त्यों २ बढत हुलास।
जेतौ मीठो वस्तु में, ते तो अधिक मिठास॥ ६२१ ॥

सज्जन से जितना प्रेम बढ़ाओगे उतना ही आनन्द बढ़ता है । क्योंकि जिस वस्तु में जितना ज्यादह मीठा (खांड इत्यादि) होगा उतना ही ज्यादह उस में मिठास होगा ॥ ६२१ ॥

करिये सभा सुहावतो, मुख ते वचन प्रकाश।
बिन समझे शिशुपाल के, बचनन भयो विनाश ॥ ६२२ ॥

मुख से ऐसे वचनों का प्रकाश करो जिनसे सभा की शोभा होवे। शिशुपाल की नासमझी के कारण उसके वचनों से उसका नाश होगया ६२२ ॥

जासों पहुँच न आइये, तासों बहसि न ठानि।
गई प्रतिष्ठा करन की, फिर न बसे पुर आनि ॥ ६२३ ॥

जिस तक पहुंच न हो (अर्थात् जिस पर कोई जोर न चले) उससे बहस न करो। जैसे राजा कर्ण की इज्जत एक दफे चली गई और फिर वे उस शहर में आकर न बसे ॥ ६२३ ॥

सब काहू की कहत है, भली बुरी संसार।
दुर्योधन की दुष्टता, विक्रम को उपकार॥ ६२४ ॥

संसार, सब की भलाई और बुराई को कहता है। दुर्योधन की नीचता और विक्रमादित्य के उपकार को (हर कोई बयान करता है) ॥ ६२४ ॥

जोति सरूपी ही सबै, सब शरीर में जोति।

दीपक धरिये ताख में, सब घर आभा होति ॥ ६२५ ॥

सब प्राणियोंके शरीरों में उस एक ज्योतिस्वरूप परमात्मा की ही ज्योति (प्रकाश) विराज रही है। जिस तरह दीपक को ताक पर रख दें, तो उससे सारे घर में प्रकाश होता हैं ॥ ६२५ ॥

वय समान रुचि होत है, रुचि प्रमान मन मोद।
बालक खेल सुहावही, यौवन विषय विनोद ॥ ६२६ ॥

उम्र के मुताबिक ही सबकी रुचि होती है और रुचि के मुताबिक ही मन में प्रसन्नता होती है। बालक को सदा खेलना ही सुहाता है और जवानी में सबको विषयों का उपभोग ही अच्छा लगता है ॥ ६२६ ॥

दान मान सनमान अरु, अपनी अपनी सान।
छोटे छोटी गति कही, मोटे मोटी मान ॥ ६२७ ॥

अपनी २ शान के अनुसार ही सब दान, मान और सम्मान को करते हैं। छोटों की गति थोड़ी ही होती है और बड़े आदमियों का बड़ा ही मान होता है ॥ ६२७ ॥

भले बुरे दोऊ रहौ, चिरंजीव संसार।
जिनते गुन अरु दोष को, जान्यो परतु विचार ॥ ६२८ ॥

(कवि कहता है कि) संसार में भले और बुरे दोनों चिरंजीव (देर तक जीने वाले) रहें। क्योंकि इन्हीं से (भले और बुरोंसे) गुण और दोष का विचार जान पड़ता है ॥ ६२८ ॥

सरस निरसतर होतु है, समय पाय सब कोइ।
दिन में परम प्रकाश रवि, चन्द मन्द दुति होइ ॥ ६२९ ॥

सब कोई समय पाकर, रसिक और बिल्कुल शुष्क हृदय वाले भी हो जाया करते हैं। सूर्य दिन के समय बहुत प्रकाश वाला और उसी समय चन्द्रमा थोड़ी चमक वाला हो जाता है ॥ ६२९ ॥

बांके नर के होत हैं, बंदनीक सब लोय।
नमत दुतिया चन्द को, पूरण चन्द न कोय ॥ ६३० ॥

बहादुर या टेढ़े (कपटी) आदमी की सब लोग वन्दना (पूजा) करते हैं (क्योंकि उन से सब कोई डरते हैं) दूज के चांद को हर कोई नमस्कार करता है परन्तु पूर्णमा के चन्द्र को कोई नहीं करता ॥ ६३० ॥

करिये तहँ पैसार जहँ, जो जानिये निसार ।
चक्रव्यूह अभिमन्यु को, सुन्यो सबन संसार ॥ ६३१ ॥

प्रवेश (दाखिल होना) वहीं करो जहां का निकलना (निसार = निकलने का रास्ता) जानते हो । अभिमन्यु के चक्रव्यूह को सारे संसार ने सुन लिया है । (अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुसना तो जानता था परन्तु निकलना नहीं, इसीलिये वह बीच में ही मारा गया) ॥ ६३१ ॥

अधिक २ जन फोरिकै, वंस हत्यो बृजराज ।
चढते चढते मोल ज्यों, दरसै बसन बजाज ॥ ६३२ ॥

ज्यादह से ज्यादह आदमियों को लड़ाकर श्रीकृष्ण ने वंशों का नाश कर दिया (पहले कौरवों का फिर यादवों का) । जैसे बजाज एक से एक बढ़िया कीमत का कपड़ा दिखाता है ॥ ६३२ ॥

परुष बचन ते रोष हित, कोमल बचन समाज ।
रजक पछारयो कूबरी, राखि लई बृजराज ॥ ६३३ ॥

कठोर वचनों से क्रोध बढ़ता है और कोमल बचनों से समाज का उपकार होता है । धोबी ने कूबरी को पछाड़ा, परन्तु श्रीकृष्ण ने उसे बचा लिया ६३३

सुदृढ सूरन चल चलै, कायर भगि रन घात ।
देवल डिगै न पवन ते, जैसे ध्वज फहरात ॥ ६३४ ॥

लड़ाई की घात को देखकर शूरवीर पहले से भी दृढ़ होकर आगे बढ़ते हैं परन्तु डरपोक उसे देखकर भाग जाते हैं । जैसे मन्दिर, वायु के वेग के कारण नहीं गिरता, परन्तु उसपर का झण्डा कांपता ही रहता है ॥ ६३४ ॥

मित्र मित्र के काम को, देत विभव करि हेत ।
जैसे चन्द प्रकाश करि, रवि मंडल तैं लेत ॥ ६३५ ॥

मित्र, मित्र के काम के लिये भलाई करने की खातिर धन दे देता है । जैसे

चन्द्रमा प्रकाश करने के लिये सूर्य मण्डल से प्रकाश ले लेता है॥ ६३५॥

तन धन हू दै लाज के, जतन करत जे धीर।
टूक २ ह्वै गिरत पै, नहिं मुख फेरत वीर॥ ६३६॥

जो पुरुष धीर होते हैं वे अपनी मान मर्यादा के लिये शरीर और धन देकर भी यत्न करते हैं। वीर पुरुष टुकड़े टुकड़े होकर गिर पड़ते हैं परन्तु मुंह नहीं फेरते, (पीठ नहीं दिखाते)॥ ६३६॥

भले बुरे गुरुजन बचन, लोपत कबहुँ न धीर।
राज काज को छांडि कै, चले विपिन रघुवीर॥ ६३७॥

धैर्यवान् पुरुष कभी भी बड़ों के अच्छे या बुरे वचनों को नहीं मिटाया करते। जैसे रघुवीर रामचन्द्र, राज्यकार्य को छोड़कर बन में चले गये॥६३७॥

विपति समय हू करत हैं, सतपूरुष पर काम।
राज विभीषन को दियो, वैसी बिरिया राम॥ ६३८॥

मुसीबत के समय भी अच्छे पुरुष दूसरों का काम किया करते हैं। श्रीराम ने वैसी हालत में भी विभीषण को राज्य देदिया॥ ६३८॥

लोकन के अपवाद को, डर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरी, सुनत रजक के बैन॥ ६३९॥

रात दिन लोगों की निन्दा और चुगली से डरते रहना चाहिये। श्रीराम ने एक धोबी के बचनों को सुनकर ही सीता का त्याग कर दिया था॥ ६३९॥

भले २ विधिना रचे, पै सदोष सब कीन।
कामधेनु पशु कठिन मणि, दधि खारो शशि छीन॥६४०॥

विधाता ने अच्छी से अच्छी चीजें बनाई हैं, परन्तु सब में कोई न कोई दोष भी जरूर दिया है। कामधेनु को पशु, मणि को सख्त, समुद्र को खारा और चन्द्रमा को क्षीण (घटने वाला, अपूर्ण) बनाया है॥ ६४०॥

जैसो कारन होतु है, तैसो कारज थाप।
कर शर धनु प्राणी हनत, कर माला हरि जाप॥ ६४१॥

जैसा कारण होता है वैसा ही काम बनता है यह निश्चय समझो। हाथ में

यदि तीर कमान होगा तो उस से प्राणियों की हत्या होगी, और यदि उसी हाथ में माला होगी तो ईश्वर का जाप होगा ॥ ६४१ ॥

इन को मानुष जन्म दै, कहा कियो भगवान।
सुन्दर मुख बोल न सकै, दैन समय धनवान ॥ ६४२ ॥

धनवान् देने के समय मुख से मीठे बचन भी नहीं बोल सकते। (इस लिये कवि कहता है कि) इन धनवानों को परमात्मा ने मनुष्य जन्म देकर क्या किया ? (अर्थात् अच्छा नहीं किया) ॥ ६४२ ॥

कहा कहैं विधि की अविधि, भूलहू परै प्रवीन।
मूरख को संपति दई, पण्डित संपति हीन ॥ ६४३ ॥

विधाता की मूर्खता को क्या कहें, होशियार भी भूल, कर ही बैठते हैं। (विधाता ने) मूर्ख को तो दौलत दे दी और विद्वानों को धन ऐश्वर्य से हीन बना दिया ॥ ६४३ ॥

वह संपति केहि काम की, जनि काहू पै होउ।
नित्य कमावै कष्ट करि, बिलसै औरहि कोउ ॥ ६४४ ॥

वह दौलत किस काम की ? ऐसी दौलत तो किसी के पास न हो तो अच्छा। जिस को कि हमेशा कष्ट पाकर कमावे तो कोई और, और उस से बिलास (भोग) कोई और ही करे ॥ ६४४ ॥

नर भूषन सब दिन क्षमा, विक्रम अरि घन घेर।
ज्यों तिय भूषन लाज है, निलज सुरति की बेर ॥ ६४५ ॥

वैसे तो हर समय मनुष्य का भूषण क्षमा है परन्तु शत्रुरूपी बादलों के घिर जाने पर पराक्रम (शक्ति) ही मनुष्य का भूषण है। जैसे स्त्री का भूषण लज्जा है परन्तु सम्भोग के समय निर्लज्ज होना ही उसका भूषण है ॥६४५॥

यों निवाह सब जगत को, रस रिस हेत अहेत।
एक एक पर लेत है, एक एक को देत ॥ ६४६ ॥

इसी तरह ही संसार का निर्वाह चल रहा है, प्रेम, क्रोध, भलाई और

बुराई सभी चीजें संसार में है। संसार में एक, दूसरे से लेता भी है और दूसरे को देता भी है ॥ ६४६ ॥

तृनहूँ ते अरु तूल ते, हरबो याचक आहि।
जानतु है कछु मांगि है, पवन उडावत नाहिं ॥ ६४७ ॥

तिनके और कपास से भी हलका मांगने वाला है। वायु भी उसे उड़ा नहीं लेजाती, क्योंकि वह जानती है कि मेरे से भी यह कुछ मांग लेगा ६४७

सेइय नृप गुरु तिय अनल, मध्य भाग जग माहिं।
है विनाश अति निकटते, दूर रहे फल नाहि ॥ ६४८ ॥

संसार में राजा, गुरु, स्त्री और आग को मध्यम तौर पर (न बहुत ज्यादा और न ही बिलकुल अलग होजाय) सेवन करे। बहुत नजदीकी तौर पर सेवन करने से विनाश है और दूर रहने से कोई फल नहीं ॥ ६४८ ॥

देखत है जग जातु है, तउ ममता सौं मेल।
जानतु हौं या जगत में, देखत भूलो खेल ॥ ६४९ ॥

सब देख रहे हैं कि संसार जा रहा है (स्थिर नहीं) फिर भी मोह से उनका संसर्ग है। मनुष्य इस संसार में देखता हुवा भी खेल को भूल गया है ॥ ६४९ ॥

भले बुराई ते डरैं, राख्यो चाहैं सोय।
जानत हैं पै दुष्ट के, अवगुण कहत न कोय ॥ ६५० ॥

भले मनुष्य बुराई से डरते हैं। उस से अपने को बचाना चाहते हैं। दुष्ट के दोषों को जानते हैं फिरभी उसे किसी से कहते नहीं ॥ ६५०॥

गुण ते अवगुण होत हैं, लिखे मिटत नहिं अंक।
बढतिजात ज्यों २ कला, त्यों त्यों शशि सकलंक ॥६५१॥

गुण से भी कभी २ दोष होजाया करता है, जो मस्तक में एक बार लिखा गया वह मिटने का नहीं। जैसे २ चन्द्रमा की कला बढ़ती जाती है, वैसे २ चन्द्रमा ज्यादा कलंक वाला होता जाता है ॥ ६५१ ॥

निश दिन खटकत तनक तृन, परै जु आंखन माहिं।

तिन में सज्जन राखिये, सो छिन खटकत नाहिं ॥ ६५२ ॥

छोटा सा भी तिनका यदि आंखों में पड़ जाय तो रात दिन खटकता है। उन्हीं आंखों में यदि सज्जनों को रखलो तो वे एक क्षण भी नहीं खटकते६५२

सजन बचावत कष्ट ते, रहैं निरन्तर साथ।
नैन सहाई ज्यों पलक, देह सहाई हाथ ॥ ६५३ ॥

भले मनुष्य सदा कष्ट से बचाते हैं और लगातार साथ रहते हैं । जैसे पलके सदा आंखो के सहायक हैं और शरीर के हाथ सहायक हैं ॥ ६५३ ॥

धनी होत निरधन बहुरि, निरधन ते धनवान ।
बडी होति निश सीत ऋतु, ज्यों ग्रीषम दिन-मान ॥६५४॥

धनवान् बार २ गरीब, और गरीब धनवान् होजाता है। सर्दी की मौसम में जैसे रात्रि बड़ी होजाती है और गर्मी में दिन बड़ा होजाया करता है ६५५

सबही कुल में होत है, एक एक सरदार।
गज ऐरावत सुर सुरप, तरुवर में मंदार ॥ ६५५ ॥

सब कुलों में एक न एक सर्दार अवश्य होता है। हाथियों में ऐरावत (इन्द्र का हाथी), देवताओं में इन्द्र और वृक्षों में कल्पतरु (स्वर्ग का वृक्ष) सर्दार हैं ॥ ६५५ ॥

जहां सनेही तहँ रहत, भ्रमत २ मन आय।
फिरत कटोरी मंत्र की, चोरी पै ठहराय ॥ ६५६ ॥

जहां अपना प्रेमी होता है वहीं पर मन घूमता २ आरहता है । जैसे मंत्र से फेंकी हुई कटोरी चोर पर ही जाकर ठहर जाती है ॥ ६५६ ॥

प्राण पियारे के दरश, हिय ते बढ़त हुलास ।
फैलत लगै बयार ते, ज्यों फूलन में बास ॥ ५५७ ॥

प्राण प्यारे के दर्शनों से मन की खुशी बढ़ती है। जैसे वायु से फूलों की सुगन्ध फैलने लग जाती है ॥ ६५७ ॥

सुनत श्रवण पिय के वचन, हिय विकसै हित पागि।
ज्यों कदम्ब बरषा समय, फूलत बूंदनि लागि ॥ ६५८ ॥

कानों से प्यारे के बचन सुनते ही प्यार में डूबा हुवा हृदय खिल उठता है। जैसे वर्षा के समय कदम्ब का फूल बूंदों के पड़ते ही फूल जाता है ६५८

ज्यों २ छुटै अयानपन, त्यों त्यों प्रेम प्रकास।
जैसे कैरी आंब की, पकरत पकै मिठास॥ ६५९॥

ज्यों २ अनजानपना छूटता चला जाता है त्यों २ प्रेम का प्रकाश होता चला जाता है। जैसे अंबी पकने पर मिठास को पकड़ती जाती है.॥६५९॥

चोरी चोरी प्रीति के, कीने बढत हुलास।
अति खाये उपजे अरुचि, थोरी बात मिठास॥ ६६०॥

चोरी २ मुहब्बत के करने से प्रसन्नता बढ़ती है। बहुत खाने से जैसे अरुचि बढ़जाती है और थोड़े में मिठास मालूम देता है ॥ ६६०॥

नीति अनीति बडे सहैं, रिस भरि देत न गारि।
भृगु उर दीनी लात की, कीनी हरि मनुहारि॥ ६६१॥

बड़े आदमी भला और बुरा सब सह लेते हैं, क्रोध में आकर गाली नहीं देते। भृगु ने विष्णु की छाती पर लात मारी परन्तु विष्णु ने क्षमा कर दिया॥ ६६१॥

रहै न कबहूं दोष लखि, एक सदन के माहिं।
एक म्यान में द्वै छुरी, जैसे मावैं नाहिं॥ ६६२॥

दो आदमी एक दूसरे का दोष देखकर एक ही घर में नहीं रह सकते। जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं॥ ६६२॥

परधन लेत छिनाय इक, इक धन देत हसँत।
शिशर करतु पतझार तरु, गहरे करत बसन्त॥ ६६३॥

एक आदमी ऐसे हैं जो दूसरे के धन को भी छीन लेते हैं और एक ऐसे हैं जो हसते २ अपना धन दूसरों को दे देते हैं। शिशिर ऋतु वृक्षों की पतझड़ कर देती है परन्तु बसन्त उन्हीं वृक्षों को पत्तों से घना कर देती है॥६६३॥

जो न परत केहि बात में, तिहिं मनुहारि न गारि।
ऐसो खेल न खेलिये, जा में जीत न हारि॥ ६६४॥

जो किसी बात से वास्ता नहीं रखता उसकी न प्रशंसा होती है न निन्दा। ऐसा खेल कभी न खेलो, जिसमें न जीत हो न हार ॥ ६६४ ॥

गहत तत्त्व ज्ञानी पुरुष, बात विचार विचार।
मथनिहारि तजि छांछ को, माखन लेत निकारि ॥ ६६५ ॥

ज्ञानवान् मनुष्य बात को अच्छी तरह से विचार कर उस के तत्व (असलीयत) को ले लेते हैं। मथने वाली छाछ को छोड़कर उस में से माखन को निकाल लेती है ॥ ६६५ ॥

मात पिता के पक्ष के, पुरुष हि प्रगट प्रभाव।
जामदग्नि में देखिये, सम रस वीर सुभाव ॥ ६६६ ॥

माता और पिता की तरफ का असर पुरुष पर जरूर प्रकट होता है। परशुराम के स्वभाव में शान्त और वीर दोनों रस देखे जाते हैं। (क्योंकि उसके पिता शान्त और माता उग्र क्षत्राणी थी) ॥ ६६६ ॥

गुरु बच जोग अजोगहू, करिये भ्रम बिसराय।
राम राज सुख छांडिकै, बनवासी भये जाय ॥ ६६७ ॥

शङ्का को दूर करके गुरु के उचित और अनुचित सब बचनों का पालन करो। जैसे श्रीरामचन्द्र राज्य के आनन्द को छोड़कर बनवासी बने ॥ ६६७ ॥

ओछी मति युवतीन की, कहैं विवेक भुलाय।
दशरथ रानी के बचन, बन पठये रघुराय ॥ ६६८ ॥

युवतियों की बुद्धि छोटी होती है, वे विवेक को दूर कर के कोई सी बात कह डालती हैं। दशरथ ने राणी कैकेयी के कहने पर रघुनाथ रामचन्द्र को बन में भेज दिया ॥ ६६८ ॥

पूजनीक गुनते पुरुष, दरसन पूजन होय।
यज्ञ तिलक कियो कृष्ण को, छांडि बडे सब कोय ॥ ६६९ ॥

पूजा के योग्य गुण के होने से ही मनुष्य का दर्शन और पूजन होता है। सब बड़े आदमियों को छोड़कर कृष्ण को ही यज्ञ का तिलक धारण कराया गया। ॥ ६६९ ॥

श्रवन करी त्यों कीजिये, मात पिता की सेव।
कांधे कांवरि लै फिरयो, पूजे जैसे देव ॥ ६७० ॥

माता पिता की ऐसी सेवा कीजिये जैसी श्रवणकुमार ने की थी, जो कि कंधे पर डोली या रक्षा को लेकर (माता पिता को तीर्थ) फिराता रहा और (जिसने उन्हें ऐसे) पूजा, जैसे देवता (पूजा जाता है) ॥६७०॥

बड़े जिती लघुता करैं, तिती बड़ाई पाय।
काम करैं सब जगत के, ताते त्रिभुवनराय ॥ ६७१ ॥

बड़े आदमी अपने को जितना छोटा जतलाते हैं उतनी ही बड़ाई को पाते हैं। विष्णु सारे जगत् का काम करते हैं फिर भी तीनों भुवनों के मालिक (त्रिभुवनराय) कहलाते हैं ॥ ६७१ ॥

अरि के कर में दीजिये, अवसर को अधिकार।
ज्यों २ द्रव्य लुटाइये, त्यों २ यश विस्तार ॥ ६७२ ॥

समय २ पर शत्रु के हाथ में भी अधिकार दे देना चाहिये। ज्यों २ वह दौलत लुटायेगा, त्यों २ अपना यश फैलेगा ॥ ६७२ ॥

जो लायक जिहि होय सो, ताही ठौर मनोग्य।
चंदेरीपति क्यों बरे, रुक्मिणि श्री हरि योग्य ॥ ६७३ ॥

जो जिसके लायक होता है वह उसी स्थान पर शोभा पाता है। रुक्मिणी जो श्रीकृष्ण के योग्य थी वह राजा शिशुपाल को कैसे वरण करती (पति के तौर पर चुनती) ॥ ६७३ ॥

घन घेरे को मिलन सुख, होत भरोसो नाहिं।
होय न होई चान्दनी, जैसे पावस मांहिं ॥ ६७४ ॥

बादलों से आकाश के घिरे रहने पर किसी से मिलने का जो सुख होता है उसका भरोसा नहीं होता (पता नहीं कब बारिश होजाय और प्यारे से मिलना न होसके) जैसे वर्षा ऋतु में चांदनी होती हुई भी न होने के समान है ॥ ६७४ ॥

बडे भले सब लच्छ ते, नहिं बिन लछ के जोग।

राम लखन धनु धरि विपिन, कहत पारखी लोग ॥६७५॥

बड़े मनुष्य सब किसी न किसी उद्देश्य के कारण ही अच्छे लगते हैं, बिना उद्देश्य के कोई योग्य नहीं होता। परीक्षक लोग कहते हैं कि राम और लक्ष्मण ने जंगल के अन्दर धनुष धारण किया (क्योंकि कोई न कोई उद्देश्य जरूर था) ॥ ६७५ ॥

ता बिन सोह न काज सिधि, जासों लागी बात।
गुरु बिन होत न चौथ व्रत, दूलह बिना बरात ॥ ६७६ ॥

जिससे किसी बात का सम्बन्ध हो, उसके बिना काम की सिद्धि, शोभा को नहीं पाती। गुरु के बिना चौथी का व्रत नहीं होता और दूल्हे के बिना बरात नहीं होती ॥ ६७६ ॥

प्रभु सों बात दुरीन तऊ, करिये अरज मुखेन।
रुक्मिणि आतुरता लिखी हरि कह जानत हेन ॥ ६७७ ॥

यद्यपि मालिक से बात छिपी नहीं रहती। फिर भी अपने मुंह से उस बात को कह देना चाहिये। रुक्मिणी ने जो अपनी व्याकुलता लिखी, कहो, क्या श्रीकृष्ण नहीं जानते थे ॥ ६७७ ॥

कठिन कलाहू आइ है, करत करत अभ्यास।
नट ज्यों चालतु बरत पर, साधै बरस छमास ॥ ६७८ ॥

अभ्यास के करने से मुश्किल बात भी आजाती है। बाजीगर जैसे साल छः महीने साधन से (अभ्यास करने से) रस्सी पर चलने लग जाता है ६७९

जो उपजै जैसो करै, जिहिं कुल जो अभ्यास।
छोटो मच्छहुँ जल तिरे, पंछी उडै अकास ॥ ६७९ ॥

जिस कुल का जो अभ्यास (चाल) है कोई भी उस में पैदा होकर वैसा ही करता है। छोटा मच्छ भी जल में तैरता है और पक्षी आकाश में ही उड़ता है (क्योंकि उनके कुलों की यही रीति है) ॥ ६७९ ॥

विद्या लक्ष्मी पुरुष पै, होय नहीं इक ठांय।
नाहिन दुख सुख सौत में, पिय पै एकहि जाय ॥ ६८० ॥

मनुष्य में विद्या और धन इकट्ठे नहीं होते। एक ही पति के पास जाकर सौतों में दुःख और सुख इकट्ठे नहीं होते ॥ ६८० ॥

गुन प्रगटै अवगुन दुरै, जाके कमला साथ।
तिय मारी परिहरी तऊ, कृष्ण त्रिलोकी नाथ ॥ ६८१ ॥

जिसके पास लक्ष्मी (दौलत) है उसके गुण तो प्रकट होजाते हैं और दोष छिप जाते हैं। श्रीकृष्ण ने स्त्री को मारा और त्याग दिया, फिर भी उन्हें सब कोई त्रिलोकीनाथ कहते हैं ॥ ६८१ ॥

मिलै दियो पूरब जनम, न दिये मिलै न सोइ।
कौन सयाने धन किया, किहिं अयान दियो खोइ ॥ ६८२ ॥

जिसने पहले जन्म में कुछ दिया है उसे ही कुछ मिलता है, न देने से कुछ नहीं मिलता। कहां किस होशियार आदमी ने धन कमाया है और किस मूर्ख ने खोया है ? ॥ ३८२ ॥

जाको न्योत जिमाइये, ताही की मनुहारि।
परनै सोई गाइये, बचन सुधारि सुधारि ॥ ६८३ ॥

जिसे निमन्त्रण देकर भोजन कराया जाय उसी की प्रशंसा करिये। जो व्याहा जारहा हो उसी की प्रशंसा के गीत, बचन सुधार२ कर गाने चाहियें ६८३

निरस बात सोई सरस, जहां होय हित हेत।
गारीहू प्यारी लगे, ज्यों २ समधिन देत ॥ ६८४ ॥

जहां प्रेम और भलाई होती है वहां बिना रस वाली बात भी भली मालूम देती है। समधिन जैसे २ गाली देती है वैसे २ वह गाली प्यारी लगती है ॥ ६८४ ॥

जो जिहिं कारज में कुशल, सो तिहिं भेद प्रवीन।
नदीप्रवाह में गज बहे, चढे उलट लघु मीन ॥ ६८५ ॥

जो जिस काम में होशियार है वही उसके रहस्य को जानने में होशियार होता है। दरिया के बहाव में हाथी तो बह जाता है परन्तु छोटीसी मछली उल्टी तरफ भी चढ़ती चली जाती है ॥ ६८५ ॥

जो जैसो सो तैसिये, करिहैं नीति प्रकास।
काठ कठिन भेदै भ्रमर, मृदु अरविंद निवास ॥ ६८६ ॥

जो जसा होता है वह वैसी ही नीति का प्रकाश करता है। भौंरा सख्त लकड़ी को तो छेद देता है परन्तु कोमल कमल में निवास करता है ॥६८६॥

इन लच्छन ते जानिये, उर अज्ञान निवास।
ऊंघै कथा पुराण सुनि, विकथा सुनै हुलास ॥ ६८७ ॥

इन चिह्नों से जानो कि हृदय में मूर्खता है। (कौन से चिह्न) पुराणों की कथा सुनकर तो ऊंघे और बुरी कथा को सुनकर प्रसन्न हो ॥ ६८७ ॥

उर उछाव हित धरम सों अशुभ करम की हानि।
मन प्रसन्न रुचि अन्न सों, ज्यों ज्वर छूटै जानि ॥ ६८८ ॥

जिसे धर्म से प्यार हो और जो बुरे कामों की हानि चाहता हो उसके दिल में उत्साह होता है। जैसे बुखार छूट जाने पर मन प्रसन्न होजाता है और अन्न में रुचि होजाती है ॥ ६८८ ॥

जपत एक हरि नाम ते, पातक कोटि विलाय।
जैसहिं कणिका आगिते, घास ढेर जरिजाय ॥ ६८९ ॥

एक परमात्मा के नाम जपने से करोड़ों पाप हटजाते हैं। जैसे आग के एक छोटे से कण से घास का ढेर जलजाता है ॥ ६८९ ॥

जो समरथ सब बात में, तिहिं भजिये तजि शंक।
करै रंक ते राव हरि, करे राव ते रंक ॥ ६९० ॥

जो सब बातों में समर्थ (योग्य) है उसे ही हर तरह की शंका को छोड़ कर भजो। (वह समर्थ कौन है ?) परमात्मा, जो निर्धन को धनवान और धनवान को निर्धन कर देता है ॥ ६९० ॥

गर्व प्रहारी हरि सही, या में नहिं सन्देह।
जरे लंक के लाख जो, लाख २ के गेह ॥ ६९१ ॥

इस बात में शक नहीं कि परमात्मा अभिमान को नष्ट करने वाले हैं। लंका नगरी के लाखों मकान जो लाख २ मुद्राओं के थे, जल गये ॥ ६९१ ॥

कहा बडे छोटे कहा, जहँ हित तहँ चित लागि।
हरि भोजन किय विदुर घर, दुरजोधन को त्यागि॥ ६९२॥

क्या बड़े और क्या छोटे, जहां भलाई है वहीं दिल लग जाता है। दुर्योधन को छोड़कर श्रीकृष्ण ने विदुर के (जो निर्धन थे) घर में ही भोजन किया॥ ६९२॥

परजनसौं सौ मन करे परहरि हरिसौं प्रीत।
झूंठे सों मानैं हरष, अहो जगत विपरीत॥ ६९३॥

परमात्मा से प्रीति को छोड़ कर मूर्ख मनुष्य दूसरे आदमियों से दिल लगाता है। आश्चर्य्य है कि दुनियां कैसी उलटी है, जो झूंठा है उससे खुशी को मानती है॥ ३९३॥

यहै अवधि अविवेक की, देखि कौन अनखाय।
काग कनक के पिंजरा, हंस अनादर भाय॥ ६९४॥

मूर्खता की इस हद को देखकर कौन नहीं व्याकुल होता? (कैसी मूर्खता) कौवा तो सोने के पिंजरे में है और हंस का अनादर होरहा है ६९४

मूरख को हित के बचन, सुनि उपजतु है कोप।
सांप हि दूध पिवाइये, वाके मुख विष ओप॥ ६९५॥

मूर्ख मनुष्य को भलाई के वचन सुनकर भी क्रोध पैदा होता है सांप को दूध पिलावो तो उसके मुख में जहर ही बढ़ता है॥ ६९५॥

गुन गरुवो लघुता गहै, तिहिं सनमानत धीर।
मन्द तऊ प्यारो लगै, शीतल सुरभि समीर॥ ६९६॥

गुणों से बड़ा मनुष्य यदि छोटा भी होजाय तो धीर मनुष्य उसकी इज्जत करते हैं। यद्यपि ठण्ढी और सुगन्धित वायु मन्द (धीरे चलने वाली) भी होती है फिर भी प्यारी लगती है॥ ५९६॥

बडी ठौर को लघु लहै, आवे आदर भाय।
मलयाचल की ज्यों पवन, परसे मन्द सुहाय॥ ६९७॥

छोटा मनुष्य यदि बड़े स्थान को पा ले तो उसका आदर होता है।

जैसे मलय पहाड़ की वायु मन्द होने पर भी चन्दन का स्पर्श होने से अच्छी मालूम होती है ॥६९७॥

महिमा युत को देत ही, लेत न तन सकुचाय।
लेत भात जगनाथ को, नृपहू शीस चढाय ॥ ६९८ ॥

महिमा से युक्त को देकर फिर लेने में शरीर को संकोच नहीं होता। राजा भी जगन्नाथ के प्रसाद को सिर पर चढ़ाकर ले लेते हैं ॥ ६९८ ॥

धन पूरण धनवान पै, बिन दीने न लहात।
ज्यों बिन बरषे सघन जल, लखहु पयोधी जात ॥ ६९९ ॥

धन से पूर्ण धनवान् भी बिना दिये कुछ प्राप्त नहीं करता। जैसे बादल बिना पानी बरसाये समुद्र को देखते २ ही चला जाता है (उससे लेता कुछ नहीं) ॥ ६९९ ॥

इक बिन मांगे ही लहै, मांगे एक लहै न।
घन जल सर सरिता भरै, चातक चोंच भरै न ॥ ७०० ॥

एक तो बिना मांगे ही प्राप्त कर लेता है और एक मांगनें पर भी नहीं प्राप्त करता। बादल का पानी तालाव और नदियों को भर देता है परन्तु चातक की चोंच को नहीं भरता ॥ ७०० ॥

बडेन की संपति सबै, लघु बिलसंत अनन्त।
दधि जल घन, घन जल धरा, धर जल जग बिलसंत७०१

बड़े आदमियों की अनन्त दौलत का छोटे आदमी विलास (भोग) करते हैं। समुद्र के पानी से बादल, बादल के पानी से पृथ्वी और पृथ्वी के पानी से सारी दुनियां विलास करती है ॥ ७०१ ॥

जिहि जेतो निहचै तितौ, देत दई पहुँचाय।
सक्कर खोरे को मिलै, जैसे सक्कर आय ॥ ७०२ ॥

जिसका जितना निश्चय होता है उसे देव उतना पहुँचा देता है। जैस शक्कर खाने वाले को शक्कर ही आकर मिल जाती है ॥ ७०२ ॥

जिय सन्तोष विचारिये, होय जु लिख्यो नसीब।

खल गुर काचरु कथरि सों, मानत रली गरीब ॥ ७०३ ॥

दिल में सन्तोष को धारण करो क्योंकि होता वही है जो भाग्य में लिखा है। गरीब, खल, गुड़, कांच और गुदड़ी से ही खुशी मनाता है ७०३

यथा योग सब मिलत है, जो विधि लिख्यो अंकूर।
खल गुर भोग गंवारनी, रानी पान कपूर ॥ ७०४ ॥

विधाता ने जो मस्तक पर लिख दिया है वह यथायोग्य सब को मिल जाता हैं। गांव के रहने वाली को खल और गुड़ का, और रानी को पान और कपूर का भोग मिलता है ॥ ७०४ ॥

समय सार दोहानि को, सुनत होय मनमोद।
प्रगट भई यह सतसई, भाषा बृन्द विनोद ॥ ७०५ ॥

समय पर दोहों का सार सुनकर दिल में प्रसन्नता पैदा होती है। इसी लिये भाषा में कवि वृन्द के द्वारा पढ़ने वालों के विनोद के लिये यह सतसई प्रकट हुई ॥ ७०५ ॥



अकारादि क्रम से दोहों की सूची।

—०—

सतसई के कुछ कठिन शब्दों की आकारादि क्रम से अर्थ सहित सूची।

अ

अनायास–बिना परिश्रम २२६

अनुग–अनुगामी, पीछे चलने वाला, नौकर ३५१

अनूप–अनुपम, अद्वितीय ७३

अभिराम–सुन्दर, अच्छा ५८

अरविंद–कमल ६८९

अरि–शत्रु २०७

अलि–भ्रमर, भौंरा ३४४

अवगुण–बुराई ६

असित–काला, अन्धेरा ५९४

आ

आतुर–व्याकुल, घबड़ाया हुआ ३६१

आतुरता–व्याकुलता, घबराहट ६७७

इ

इंगित–इशारा ३८६

उ

उदधि–समुद्र २२०

उपचार–सेवा, इलाज ६१

क

कच्छप–कछुवा ५७०

कटु–कड़वा ३०

कनक–धतूरा ९१

कनक–सोना ११८

कपि–बन्दर २९९

कमला–लक्ष्मी ६८१

करार–आराम ६१

कुंभ–घड़ा २१३

कुंभ–गण्डस्थल (कनपटी) ३२

कलह–झगड़ा ५७४

करी–हाथी ३२

कूप–कुआ ९३

क्षीर–दूध १७२

गज–हाथी ६९

गिरिवर–पहाड़ २७

गुंजा–रत्ती, चोंटली ६७

ग्रीषम–गरमी २७

घ

घन–बादल १

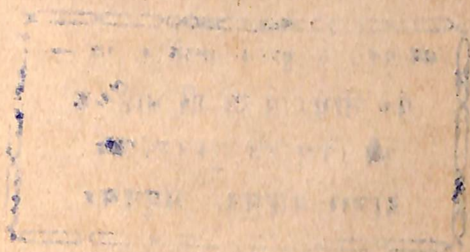
चख–चक्षु, आंख १०३

छ

छाग–बकरा १७८

ज

जनि–नहीं ११७



सब तरह की संस्कृत और हिन्दी पुस्तकों के मिलने का ठिकाना—

मेहरचन्द लक्ष्मणदास

अध्यक्ष संस्कृत पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार

लाहौर ।



